॥ श्रीहरिः ॥

सुन्दर समाजका निर्माण

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तकमें हमारे श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा वि० सं० २०३८ में बीकानेर चातुर्मास तथा वि० सं २०३९ में जयपुर चातुर्मासके अवसरपर दिये गये कुछ सर्वोपयोगी प्रवचनोंका संग्रह किया गया है। इस साहित्यके प्रेमी पाठक-गण पूज्यवर स्वामीजीसे परिचित हैं ही। आपके सिद्धान्तों, उपदेशों तथा वचनोंसे असंख्य नर-नारी आध्यात्मिक लाभ उठा चुके हैं और उठा रहे हैं।

वर्तमान समयमें प्रस्तुत प्रवचनोंकी उपादेयता गृहस्थियों, भाइयों, बहिनों, साधकों, विद्यार्थियों अर्थात् समाजके सभी वर्गोंके लिये है। आवश्यकता केवल लाभ लेनेके निश्चयकी है। इन बातोंको पढ़ने-सुननेमात्रसे भी लाभ तो होता ही है, पर काममें लेनेसे बहुत विशेष लाभ होता है। अतः पाठकोंसे निवेदन है कि इन प्रवचनोंमें कही गयी बातोंके अनुसार जीवन बनानेकी चेष्टा करें व परम लाभ प्राप्त करें।

—**प्रकाशक**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

प्रधान विषय पृष्ठ-संख्या

प्रवचन—१

समाजकी जिम्मेवारी—बड़ोंपर ७

श्रेष्ठ गुण—निरभिमानता ९

व्याख्यान देनेके अधिकारी १०

बड़प्पनका अभिमान १३

उपयोगकी महिमा १७

छोटे स्नेहके पात्र २१

बालकोंपर जिम्मेवारी २३

विद्यार्थियोंपर जिम्मेवारी २४

नमस्कारकी महिमा (उदाहरण मार्कण्डेय) २५

सुधारका सुन्दर तरीका २८

माँ-बापकी सेवा ३१

पढ़ाईका उद्देश्य ३२

आज्ञा-पालनसे लाभ ३५

प्रवचन—२

विवाहका पवित्र उद्देश्य ३८

मन भगवान्‌में कैसे लगे ? ४२

मन न लगनेमें कारण ४४

भोगे हुए संस्कार कैसे नष्ट हों ? ४५

बुरे संस्कार क्यों पड़ते हैं ? ४६

बुरे संस्कार कैसे मिटें ? ४७

समता कैसे रहे ? ५०

समता स्वतःसिद्ध है ५३

अपने-आपमें स्थित होना ५४

प्रवचन—३

परमात्मतत्त्वकी नित्यता	....	५७
परमात्म-प्राप्तिमें खास बाधा	....	६०
प्रत्येक परिस्थितिमें सम रहें	....	६१
चिन्ता मिटानेके विषयमें एक कहानी	....	६३
सुखी-दुःखी होनेमें कारण—मूर्खता	....	६६
करनेमें सावधान होनेमें प्रसन्न	....	६९
धनके लिये अन्याय मत करो	....	७२
सती सुकलाकी कथा	....	७४
संसारमें रहनेका तरीका	....	७६

प्रवचन—४

असली स्वतन्त्रता	....	८०
स्वभाव सुधारनेका अवसर	....	८३
सुख पहुँचानेका भाव	....	८६
शुद्ध स्वभावकी आवश्यकता	....	८८
शुद्ध स्वभाववालेका आदर	....	९१
स्वभाव शुद्ध करनेका उपाय	....	९४

प्रवचन—५

मनुष्य-जीवनकी सार्थकता	....	९९
वर्तमान पतनका कारण	....	१०१
मनुष्य-जीवनकी सफलता—किसमें ?	....	१०३
तीन शक्तियाँ—जानना, करना और पाना	....	१०६
पापका फल—दुःख-प्राप्ति	....	१०७
शीघ्र चेत करो ! मौत नजदीक आ रही है	....	१११
मानव-जीवनका खास काम	....	११७

प्रवचन—६

रुपयोंमें सुख नहीं	....	१२३
अनुभवका आदर करो	....	१२६
सत्संगसे शान्ति	....	१२८
परमात्मसुखमें स्वतन्त्रता	....	१३२
सर्वत्र परमात्मसुख	....	१३४
राजा भर्तृहरिकी कथा	....	१३५
सुख केवल भगवान्‌की ओर	....	१३८

प्रवचन—७

श्रेष्ठ साधन—शरणागति	....	१४३
भगवान्‌पर जिम्मेवारी	....	१४५
कर्णकी कथा	....	१४८
असली धन—समयका सदुपयोग	....	१५१
केवल भगवान्‌का सहारा	....	१५३
महाभारत-युद्धकी घटना	....	१५८

॥ श्रीहरि: ॥

प्रवचन—१

समाजकी जिम्मेवारी—बड़ोंपर

समाजकी जिम्मेवारी समाजमें बड़े कहलानेवालोंपर होती है। जैसे, घरमें कोई समस्या आती है, तो घरमें जो मुख्य होते हैं, उनपर ही उसकी जिम्मेवारी होती है। ऐसे समाजकी जिम्मेवारी जो समाजमें बड़े कहलानेवाले होते हैं, उनकी होती है। उस जिम्मेवारीका पालन कैसे किया जाय? इसमें एक मार्मिक बात है कि अपने कर्तव्यको समझा जाय। आज बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं, उनमें बाह्य हेतु बताये जाते हैं, वे भी ठीक हैं; परंतु मूलमें विचार कर हम देखते हैं, तो जो साधु और ब्राह्मण हैं, ये अपने कर्तव्यका ठीक पालन नहीं कर रहे हैं। इससे बहुत अनर्थ हो रहे हैं और अगाड़ी भी कितने होंगे, इसका कोई पता नहीं। गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(३। २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं; दूसरे मनुष्य वैसा ही आचरण करते हैं। '**स यत्प्रमाणं कुरुते**' श्रेष्ठ पुरुष जिसको प्रमाणित कर देते हैं, '**लोकस्तदनुवर्तते**' लोग उसका अनुसरण करते हैं। तात्पर्य निकला कि जैसे श्रेष्ठ पुरुष करते हैं, वैसे ही अन्य पुरुष करते हैं और वे जैसा कहते हैं, वैसा ही अन्य लोग करते हैं।

'**लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि**' (गीता ३। २०)

श्रेष्ठ पुरुष लोक-संग्राहक होते हैं। यह लोकसंग्रह क्या होता है?

दो तरहसे लोकसंग्रह होता है। श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणसे और श्रेष्ठ पुरुषोंके वचनसे। उन दोनोंमें देखा जाय तो '**यत् यत् आचरति श्रेष्ठः**' यहाँपर '**यत्**', '**यत्**' दो पद दिये हैं और '**तत्**', '**तत्**', '**एव**' तीन पद दिये हैं। '**स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते**' वहाँ '**यत्**' व '**तत्**' दो ही पद हैं। आचरणमें पाँच पद हैं। इसका आशय क्या निकला? जहाँ मनुष्यके आचरणोंका असर पाँच गुना पड़ता है, वहाँ वचनोंका असर दो गुना पड़ता है।

मूलमें कमी हमारे भीतर है। कहाँसे शुरू हुई? साधु-आश्रममें हम आ जायँ, कपड़े बदल लिये—मनमें फूँक भर गयी कि बस हम तो साधु बाबाजी हो गये। अब तुम गृहस्थ हो तो हमारी सेवा करो। तुम चेला हो, हम गुरुजी हैं। ऐसे केवल भेष बदलनेमात्रसे बड़े हो गये। बड़े हो नहीं गये, अपनेको बड़ा मान लिया। यह अपने-आपको बड़ा माननेका काम अपना है ही नहीं भारतीय संस्कृतिमें। दूसरोंको बड़ा माननेका हमारा सिद्धान्त है। अपनेको बड़ा माननेवाला अभिमानी होता है। आसुरी सम्पत्ति सब-की-सब अभिमानकी छायामें ही पुष्ट होती है और रहती है। जैसे, बहेड़ेकी छायामें कलियुग निवास करता है। ऐसे '**अहं**' अभिमान (अपनेको बड़ा मानना)-की छायामें ही सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्ति निवास करती है। साधुमात्र बन जानेसे अपनेको बड़ा मान लिया। बाबाजी हो गये। ब्राह्मणके घर जन्म लेनेमात्रसे अपनेको बड़ा मानने लग गये कि हम बड़े हैं। अब ब्राह्मणके घर जन्म लेनेमात्रसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इनको बड़ी हीन दृष्टिसे देखने लग गये। साधुमात्र होनेसे गृहस्थियोंको हीन दृष्टिसे देखने लग गये। तो ये जो रहे मुख्य, ये समाजमें हो गये अभिमानी; होना तो चाहिये था नम्र! कोई बड़ा होता है, वह अभिमानके कारण नहीं, नम्रताके कारण बड़ा होता है। साधु और ब्राह्मण बड़े हुए हैं, किस वास्ते हुए? किस कारणसे हुए?

श्रेष्ठ गुण निरभिमानता

त्यागो गुणो गुणशतादधिको मतो मे
विद्याविभूषयति तं यदि किं ब्रवीमि।
शौर्यं हि नाम यदि तत्र नमोऽस्तु तस्मै
तच्च त्रयं न च मदोऽस्ति विचित्रमेतत्॥

सबसे पहले त्याग है। मैंने एक दिन सुनाया भी था। लोग कहते हैं ब्राह्मणोंके हाथमें पुस्तकें रहीं तो लिख दिया कि ब्राह्मण सबसे ऊँचा। तो यह बात है नहीं। वास्तवमें ब्राह्मण ऊँचा है, यह ब्राह्मणोंने अपने हाथसे अपनेको ऊँचा बनाया हो ऐसी बात है नहीं। जो पुरुष अपनी बड़ाई करेगा, वह तो पतित हो जायगा, गिर जायगा वह। जो अपने मनमें भी अपनेको बड़ा मानता है, वह गिर जाता है; क्योंकि अपने मनसे बड़ा तो हो ही गया, अब तो गिरना ही बाकी रहा। अपनेको बड़ा न माने, यह बात थी उनमें त्याग मुख्य था, त्याग। ब्राह्मणोंके लिये नौ धर्म बताये, '**शमो दमस्तपः शौचं......**।' क्षत्रियोंके लिये सात बताये, वैश्यके लिये तीन बताये, शूद्रके लिये एक। ब्राह्मण नौके पालन करनेसे जिस पदको प्राप्त होता है, शूद्र एकके पालनसे उस कल्याण पदको प्राप्त हो जाता है। इनकी तो उदारता रही है, त्याग रहा है सदा ही। अभिमान नहीं रहा है। अभिमान नहीं करते थे।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

ब्राह्मण अपने कर्मोंके द्वारा चारों ही वर्णोंमें रहनेवाले परमात्माका पूजन करे। सबका '**अभ्यर्च्य**' में अन्वय है। पूजनकी दृष्टिसे बात कही। कथा सुनावे, व्याख्यान दे, शिक्षा दे, गुरु बने तो अपनेमें बड़प्पनका अभिमान न रखे अपितु उनसे प्यार

करे। छोटे जितने होते हैं, सब-के-सब प्यारके पात्र होते हैं। ये ठेठ (आरम्भ)-से ब्राह्मण और साधु अपनेसे छोटोंको प्यार करना शुरू करेंगे तो क्षत्रिय और वैश्य भी अपनेसे छोटोंसे प्यार करेंगे तो हरिजन आदिका तिरस्कार—अपमान नहीं होगा। पर आप तो अभिमान करके दूसरोंका तिरस्कार करते हैं और कहते हैं कि उनका आदर करो।

व्याख्यान देनेके अधिकारी

आपलोगोंसे मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ। मैं जो बातें कहता हूँ वे शास्त्रोंकी, सन्त-महात्माओंकी, ऋषि-मुनियोंकी, भगवान्‌की बातें हैं। मैं मेरी बात नहीं कहता हूँ। मेरी बात कोई दीखे तो उसको आप मानना मत। शास्त्रोंकी दीखे तो आपको, मेरेको, सबको ही मानना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं कहने लग गया, तो बड़ा हो गया, आप सुननेवाले छोटे हो गये। ऐसी बात नहीं है। छोटा-बड़ा नहीं। सनकादिकोंमें एक वक्ता बन जाते हैं, तीन श्रोता बन जाते हैं। ऐसी कथा आती है। दशम स्कन्धमें ८७वें अध्यायमें जहाँ वेदोंका वर्णन आता है न, जहाँ वेद-स्तुति करते हैं, वेद-स्तुतिका संवाद सनकादिकोंका है। तो वे छोटे-बड़े थोड़े ही हो गये। भगवच्चर्चा करनी है अपने तो ठीक तरहसे।

अगर इनमें छोटा-बड़ा देखा जाय तो बड़े सुननेवाले होते हैं, बड़ा सुनानेवाला नहीं होता है। सुनानेवाला तो नौकर है। उसको समयपर हाजिर होना पड़ेगा। सुननेवाले मालिक हैं, आवें न आवें, थोड़े आवें, देरीसे आवें, बीचमें उठ जायँ, पर सुनानेवाला ऐसा कर सकता है क्या? आवे न आवे, देरीसे आवे और बीचमें उठ जाय। कैसे हो सकता है? वह तो दास है सबका! बहम पड़ता है कि मैं बड़ा हूँ। वास्तवमें

बड़ा नहीं है। अगर भगवत्सम्बन्धी बातें विशेषतासे कहता है तो उसका लाभ जितना वक्ताको होता है, उतना श्रोताको नहीं होता है। वक्ता जितनी बात कहता है न, उतनी उसको सोचनी पड़ती है, कहनी पड़ती है। घंटाभर बोलता है तो उस विषयको समाधिकी तरह ठीक करना पड़ता है और उसमें मन लगाना पड़ता है। मन जितना अधिक लगता है, बुद्धिमें बात उतनी ही पकड़में आती है। बुद्धिमें बात जितनी अधिक आती है उतनी उसके आचरणोंमें आती है और लोगोंके सामने अच्छी बात कहनी पड़ती है; क्योंकि इज्जत अपनी रखनी है। इज्जतके लिये भी कहता है तो अच्छी बातें कहेगा, तो अच्छी बातें फुरणा होगी उसका आचरण अच्छा होगा। सुननेवालोंपर थोड़े ही है जिम्मेवारी इतनी।

बहुत-सी बातें हैं, अब थोड़े समयमें मैं क्या कहूँ? वास्तवमें कहनेवालेको लाभ बहुत होता है। कहनेवालेके सिद्धान्त बुद्धिमें आते हैं, बुद्धिके द्वारा मनकी कल्पनामें आते हैं, मनकी कल्पनाके बाद शब्दोंमें आते हैं। जितना शब्दोंसे आता है विषय, उतना लोगोंके कानोंतक नहीं पहुँचता और जितना कानोंतक पहुँचता है, उतना उनका मन नहीं पकड़ता है। जितना मन पकड़ता है, उतनी बुद्धिमें उस विषयकी स्थिरता नहीं होती। बुद्धिमें जितना जँचता है, उतना उनके आचरणमें नहीं आता। तो सुननेवालोंके आचरण अच्छे होते हैं तो वक्तामें अच्छाई कितनी पहले आयी? और कहाँतक पहुँची वह? इतनेपर भी सुननेवालोंका सुधार होता है तो कहनेवालेका कितना सुधार होगा?

मेरे तो महापुरुषोंके सामने ऐसी बातें हुई हैं। मैंने ऐसा निवेदन किया कि मेरा बोलनेका मन नहीं करता। कहनेका, व्याख्यान देनेका मन नहीं करता। पर उन्होंने कहा, करो; उन्होंने प्रेरणा

दी विशेषतासे। लोगोंको तो, 'व्याख्यान देना है—हमें मिले मौका', ऐसी बात होती है। मेरे भी बोलनेकी मनमें आयी है कि मैं सुनाऊँ; परंतु मैंने विचार किया है, तो विचारके द्वारा सुनानेकी बात बढ़िया नहीं लगी हमें। मैंने सन्तोंसे यह बात सुनी है कि संसारमें सबसे नीचा अगर काम है तो व्याख्यान देनेका है। ऐसा सन्त-महात्माओंसे मैंने सुना है अपने कानोंसे। सबसे नीचा काम है यह। सबसे ऊँचा काम टट्टी-पेशाब फेंक देना, झाड़ू लगा देना, सफाई कर देना है। जो कहता है मैं सेवा करता हूँ तो सेवामें जितना नीचा काम होगा, उतना करनेवालेको लाभ ऊँचा होगा। जितना ऊँचा काम होगा, उतना लाभ नीचा होगा।

आप सोचो, विचार करो। कहनेका अधिकारी कौन होता है? कहनेका अधिकारी वह होता है, जिसने अपनेमें उन बातोंको ठीक अनुभव करके देखा है। अनुभवके बिना कहता है तो सन्तोंकी वाणीमें आता है '***करनी बिन कथनी कथे, अज्ञानी दिनरात। कूकर ज्यों भुसता फिरै सुनी सुनाई बात॥***' कुत्तेका दृष्टान्त क्यों दिया? एक जगह कोई कुत्ता भूसता है तो दूसरे मुहल्लेवाला कुत्ता भी भूसने लगता है, तीसरेमें भी भूसता है सब कुत्ते भूसने लग जाते हैं। उन कुत्तोंको पूछा जाय तुम किसको भूसते हो—यह तो पता नहीं। एक भूसता था सबने शुरू कर दिया। तो जैसे कुत्ता सुनकर भूसने लग जाता है ऐसे कहींसे सुन लिया, अपने भी कहना शुरू कर दिया। अरे भाई! बातोंको जानते नहीं, करके देखा नहीं, तबतक कहनेका क्या अधिकार है? तो हमारे बड़ा संकोच हो गया। मेरेको तो तैयार किया उन्होंने कि तुम बोलो। प्रेरणा की है। लोगोंके मनमें आती है कि हम भी बोलें। परंतु भाई! यह खतरनाक चीज है। बड़ा बनना खतरनाक है।

हमने देखा अमरकोषमें विद्वान्‌के नाममें वहाँ *'दोषज्ञ'* नाम आता है। अब *'दोषज्ञ'* कोई बढ़िया है क्या? बढ़िया तो गुणज्ञ होता है। दोषोंका ज्ञान हो उसे *'पंडित'* कहते हैं। तो दोषोंका ज्ञान होगा तो दोषोंके साथ सम्बन्ध होगा। सम्बन्ध होगा तो दोष अपनेमें आवेंगे ही, मेरे ऐसी शंका हुई है। एक जगह सत्संगकी बात है। मैं जिनको अच्छा समझता था, आदरणीय समझता था, मैंने उनके सामने उनकी बातें सुनकर कहा, किसीका दोष मत देखो, यह बात तो आप कहते हो और व्याख्यान सुनानेवाला यदि दोष नहीं देखेगा तो दोष देखे बिना उसका निराकरण कैसे करेगा तथा लोगोंके आगे कैसे विवेचन करेगा? कहेगा कैसे? चेतायेगा कैसे—ऐसा करो और ऐसा मत करो। इस वास्ते दोष-दृष्टि तो करनी पड़ेगी। उन्होंने बड़ा सुन्दर समाधान किया कि यह दोष-दृष्टि नहीं है, यह एक निर्दोष दिदृक्षा (देखनेकी इच्छा) है। दोष-दृष्टि वह होती है कि दोष देखकर राजी होवे, उसकी निन्दा करके प्रसन्न होवे तब तो वह है दोष-दृष्टि। उनमें जो दोष है, उससे दुःख होता है, उन दोषोंको कैसे दूर किया जाय, ऐसे भावसे कहता है वह दोष-दृष्टि नहीं है; क्योंकि वह निर्दोष देखना चाहता है। नीयतके ऊपर बात है न।

बड़प्पनका अभिमान

आज हमारे जो आफत आ रही है तरह-तरहकी उससे बचनेका उपाय क्या है? मूलसे साधु और ब्राह्मण किसीको नीचा न माने यहाँसे शुरू होगा। केवल कपड़ा रँगनेमात्रसे क्या हो गया? हमारे सन्तोंद्वारा तो बड़ी तीक्ष्ण आलोचना की गयी है। कहनेमें संकोच होता है। हमारी निंदा हो जाती है।

भेष पहर भूलो मति भाई, आथर और गदेड़ी वाही॥

गधेके ऊपर लादते हैं न भार, तो नीचे आथर होता है उसे 'आथरिया' कहते हैं। आथरिया बदलनेसे क्या गधेड़ी बदल गयी। ऐसे कपड़ा बदलनेसे क्या वह बदल गया? यह बात दूसरी है कि गृहस्थाश्रमवालोंको चाहिये कि भेषधारी आ गया तो रोटी दे दो। यह तो उनका बड़प्पन है। पर साधुको अपनेमें बड़प्पनका आरोप कर लेना तो गलती है न। साधु अपने साधुओंकी महिमा कैसे कह सकता है? वैसे ही ब्राह्मण ब्राह्मण-जातिकी महिमा कैसे कह सकता है? ऐसे पुरुष पुरुष-जातिकी महिमा कैसे कह सकता है? अगर कहता है तो उसकी नीयत ठीक नहीं है।

बड़प्पन तो औरोंको देनेका है, यह लेनेका नहीं है। सेवा करना, सुख पहुँचाना, खटना, परिश्रम करना—यह है अपने लेनेका और बड़ाई, मान-आदर, सत्कार ये देनेके हैं, लेनेके नहीं। सेवा करनेकी है, लेनेकी नहीं। भगवान् विष्णु सबसे बड़े माने जाते हैं इसमें कारण क्या है? पालनशक्ति है। सबका पालन-पोषण करनेका काम हाथमें लिया है। '**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' वे प्राणी-मात्रके सुहृद् हैं। उनके पापी-पुण्यात्माका भेद नहीं है। इस वास्ते बड़े हैं और भगवान्‌का निवास है चरणोंमें, इसी वास्ते बड़ोंके चरण छूकर प्रणाम करते हैं। विष्णुभगवान्‌का निवासस्थान कहाँ है? चरणोंमें है। इस वास्ते वे बड़े हैं। गीतामें उपदेश दिया—

'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥**'

(१८। ४६)

अपने कर्मोंके द्वारा परमात्माका पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है। ब्राह्मणमें '**शमो दमस्तपः**' आदि जो गुण हैं, उनके द्वारा वह पूजन करे और '**परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि**

स्वभावजम्॥', '**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य**' शूद्रका कर्म भी पूजन है। पूजनके द्वारा पूजन करना तो डबल पूजन हुआ कि नहीं? उसको नीचा कैसे माना जाय? अपने मनमें दूसरेको नीचा मानना यह अभिमानका परिचायक है। माता-बहनोंके लिये लिखा कि तुम पतिको परमेश्वर मानो, तो यह माताओंके लिये कहा है, न कि पुरुषोंके लिये कहा है कि मैं परमेश्वर हूँ, नहीं तो ब्याह किये हुए तो सब परमेश्वर हो जायँगे। कुँवारा बेचारा रह जायगा बाकी। वह परमेश्वर किसका बने। यह तात्पर्य नहीं है।

गोरखपुरके पास एक गाँवकी बात है—एक बेचारी बुढ़िया हरिजनोंके घरकी थी, वह पानी भरनेके लिये गयी तो उन्होंने पानी उसका भरा नहीं। बहुत देर बैठी रही, उसने पानी माँगा, दिया नहीं। तो उस समय एक यवन भाईने देखा तो उससे कहा 'तुम क्या करती हो? तुम हमारे यहाँ आ जाओ सब अधिकार मिलेगा तुम्हें'। वह भोली-भाली ग्रामीण थी बेचारी। उस भाईने कई प्रलोभन दिये। तो उस माईने पूछा, 'वहाँ गङ्गाजी हैं क्या तुम्हारे? यमुनाजी, प्रयागराज आदि हैं क्या'? ये तो नहीं हैं। तो हम नहीं जायँगी। तो हम ऐसे यवन नहीं बनेंगे, जहाँ गङ्गाजी नहीं हैं। तो क्या है यह? यह है गङ्गाजीके प्रति श्रद्धा भीतरसे। मरनेपर भी हड्डियाँ डाली जायँ तो कल्याण हो जाय। ऐसा हमारा धर्म है, धर्मशास्त्र है। धार्मिक जितनी चीजें हैं, इनके प्रति आजकल अश्रद्धा करायी जाती है और फिर कहते हैं उनका निरादर करते हो तुम। लोग निरादर क्यों करते हैं? अपने खुद पहले शास्त्रोंका, सिद्धान्तोंका, धर्मका निरादर करते हैं, इससे यह दशा होती है अगाड़ी। अगर आप ठीक तरहसे सिद्धान्तको मानो तो कितनी विचित्र लाभकी बात है।

सज्जनो! मैंने पुस्तकें देखी हैं, सन्तोंसे मिला हूँ, मैंने बहुत विचित्र-विचित्र बातें पढ़ी हैं और सन्तोंसे सुनी हैं। मेरी एक धारणा बनी है कि केवल पुस्तक पढ़नेसे इतना पूरा बोध नहीं होता, जो अच्छे जानकार सन्तोंसे बातें सुननेसे वास्तविक बोध होता है। उसमें मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि संसारमें कितना ही नीच प्राणी क्यों न हो, उसका भी उद्धार हो सकता है, भगवान् मिल सकते हैं, वह तत्त्वज्ञ हो सकता है; जीवन्मुक्त हो सकता है। और वह वही हो सकता है, जिसमें अपना अभिमान नहीं। तो जो आज हरिजन माने जाते हैं, नीच माने जाते हैं उनको ज्ञान जितनी जल्दी सुगमतासे हो सकता है, उतनी जल्दी सुगमतासे अपने-आपको श्रेष्ठ माननेवालोंको नहीं हो सकता। कारण क्या? बड़प्पनका अभिमान पतन करनेवाला है, उस अभिमानको दूर करना ही पड़ता है।

'**दम्भो दर्पोऽभिमानश्च**' अभिमान आसुरी सम्पत्ति है, उन नीच वर्णवालोंके अभिमान काफी दूर हुआ रहता है, इस वास्ते कहा है—

नीच नीच सब तर गये राम भजन लवलीन।
जाति के अभिमान से डूबे सभी कुलीन॥

'अभिमान' का यह अर्थ नहीं कि मैं निंदा करता हूँ। मैं ऊँचे वर्णको ऊँचा ही मानता हूँ। परंतु वे ऊँचे तभी होंगे, जब ऊँचा कार्य करेंगे। कार्य नीचा करेंगे तो ऊँचापन कितना टिकेगा। वह ठहर नहीं सकता। जो कार्य अच्छा करेगा तो वह अपने-आपको भले ही नीचा माने, पर दुनिया उसे बड़ा मानने लग जायगी। जबर्दस्ती बड़ा मानेगी; क्यों, वास्तवमें वह बड़ा है। जैसे मैंने दृष्टान्त दिया था कि कृष्णभगवान् घोड़े हाँकनेवाले बने, सारथी बन गये। अठारह अक्षौहिणी सेना

क्षत्रियोंकी, उन क्षत्रियोंके बीचमें अवतार लेनेवाले भगवान् घोड़े हाँकते हैं एक साधारण आदमीके। यह कोई बड़ा काम है क्या? बहुत छोटा काम है, उसे स्वीकार किया। भगवान्‌को घोड़ोंका कोचवान होते लाज नहीं आयी और छोटे-से-छोटे बन गये तो क्या हुआ? जिस समय उधर भीष्मजी महाराज शङ्ख बजाते हैं कौरव-सेनामें सबसे पहले। '**ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः**' फिर दूसरे शङ्ख बजाते हैं। यहाँ पाण्डव-सेनामें '**पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः**' सबसे पहले कृष्णभगवान् शङ्ख बजाते हैं। तो जो बड़ा होता है उसको बहम नहीं होता है कि मेरा छोटा आसन हो जायगा। मैं छोटी जगह कैसे बैठूँगा। यह बहम उन्हींको होता है, जो छोटे होते हैं वास्तवमें और बड़ा बनना चाहते हैं। कोई छोटा न मान ले, यह डर लगता है। वे अगर वास्तवमें बड़े हैं तो भय किस बातका? आप स्नेह करो, प्यार करो। हमारा जो समाज है वह धर्मकी प्रधानताको लेकर और मुक्तिका उद्देश्य लेकर है। दूसरोंका उद्देश्य प्रायः अपनी टोली बढ़ानेका है; उनमें धर्म नहीं है, मुक्ति नहीं है—यह मैं नहीं मानता हूँ। मुक्ति सबमें होती है और सबमें अच्छे-अच्छे आचार्य, सन्त-महात्मा हुए हैं और अब भी सबमें अच्छे आदमी हो सकते हैं। परंतु आज जो यह चाल-चलन चल रहा है, यह क्या है? यह केवल वोट ज्यादा आ जाय हमारे। इस वास्ते टोली बनानेकी बात चल रही है। यह तत्त्व नहीं है, तथ्यकी बात नहीं है; परंतु भोले-भालोंको तो लोभ ही दिया जाय और क्या किया जाय?

उपयोगकी महिमा

तीसरे, ये धनी धन-संग्रहमें लगे हैं। मेरेको दुःख होता है पर अब किससे कहूँ? कोई सुनता नहीं। धन केवल संग्रह

करनेके लिये नहीं है। सज्जनो! धन उपयोगके लिये है। महिमा वस्तुकी नहीं है, न वर्णकी है, न आश्रमकी है, न परिस्थितिकी है, न योग्यताकी है—महिमा उसके उपयोगकी है। सदुपयोग किया जाय तो कल्याण करनेवाली हो जाय धनवत्ता भी और दरिद्रता भी, बीमारी भी और स्वस्थता भी, पण्डिताई भी और मूर्खता भी। दुरुपयोग किया जाय तो पण्डिताई, बड़ाई, धनवत्ता ये सभी नरकोंका रास्ता हो जावेगा। तो धनका उपयोग बड़ा है। मानव-शरीरकी महिमा गायी गयी तो मानव-शरीरके उपयोगकी महिमा है। सज्जनो! शरीरकी महिमा नहीं है।

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस ४। ११। ४)

उत्तरकाण्डमें आया है—

'नर तन सम नहिं कवनिउ देही।'

(मानस ७। १२१। ९)

एक ही ग्रंथमें गोस्वामीजी महाराजने एक ही लेखनीमें एक जगह उत्तम बताया है और एक जगह अधम बताया है। ***'जीव चराचर जाचत तेही', 'नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी'॥*** तो यह श्रेष्ठ क्यों है? उसका विवेचन करते हुए कहते हैं—ये छः चीजें मिलती हैं मनुष्य-शरीरसे। उन छः चीजोंमें एक नम्बर नरक, यह महिमा है। मनुष्य-शरीर सबसे बढ़िया है, क्योंकि साहब नरक मिल जाय इससे। तो यह महिमा हुई कि निंदा और बातें भी आयी हैं महिमाके प्रसंगमें।

सात प्रश्न किये हैं गरुड़जीने भुशुंडिजीसे। उनमें सबसे पहला प्रश्न है यह। सबसे उत्तम शरीर कौन-सा? मनुष्यका। उसकी

महिमामें यह कहते हैं तो अर्थ क्या निकला? दुरुपयोग किया जाय तो नरक मिलेगा, चौरासी लाख योनियाँ मिलेंगी, महान् कष्ट पाना पड़ेगा। उपयोग अच्छा किया जाय तो महाराज! स्वर्ग मिल जाय, वैराग्य मिल जाय, ज्ञान मिल जाय, भगवान्की श्रेष्ठ भक्ति मिल जाय, इसी शरीरमें, इस वास्ते इस शरीरकी महिमा है। अगर यह श्रेष्ठ बातें नहीं की तो ऐसा शरीर मिलनेपर भी नरक ही मिलेगा। इस वास्ते ऐसे ही धनका आप उपयोग करो।

मेरे एक बातका दु:ख है, आप कृपाकर दु:ख दूर करो। आपने संग्रह करनेकी ही वृत्ति कर रखी है। केवल संग्रह करना बस, सहस्रपति, लखपति, करोड़पति बन जावें हम! खर्च कर नहीं सकते। अगर लाख रुपये रोकड़ी हो जायँ और उन रुपयोंसे वह व्यापार आदि करता है और लड़के काम करते हैं; करते-करते उस लाख रुपयेमेंसे कहीं दो-चार-दस हजार खर्च हो जाय तो बिगड़ता है मालिक कि तुम रोटी कमाकर खाओगे? अरे, मूलधन खर्च करते हो? कमाओ, खाओ और कुछ जमा करो। तो मूलधनके क्या तूली लगाओगे? क्या करोगे बताओ? कोरा अभिमान बढ़ाओगे। परंतु अब धुन हो गयी, एक ही बस। धन इकट्ठा करना है। सज्जनो! इकट्ठा करना क्या था? '**यक्षवित्तः पतत्यधः**' यक्षवित्त होता है वह। यक्ष राक्षस हैं न, कुबेर आदि, ये धन इकट्ठा करते हैं। महाभारतमें कथाएँ आती हैं।

अगस्त्य ऋषि थे, महाराजासे मिलने गये तो महारानियोंके पासमें चली गयी ब्राह्मणी। उसके साधारण कपड़ा। रानियोंके बड़ा गहना रत्नोंका, बढ़िया साड़ियाँ पहननेके लिये। ब्राह्मणीसे रानियोंने कहा कि हमारे तो आप गुरु हो। आपकी ऐसी पोशाक! तो वह संग लग गया। घरपर आये तो ब्राह्मणीने कहा 'हमारे भी गहना होना चाहिये। आपके जो यजमान हैं, शिष्य हैं, उनके

तो ऐसा बढ़िया-बढ़िया गहना है और उनके गुरुके ऐसी बात!' महाराजने समझा कुसंग लग गया। फिर राजाके पास गये तो राजाने सब बता दिया कि 'महाराज! यह बात है। इतना खर्चा है, कहाँसे लावें?' फिर दूसरेके पास गये, ऐसे बहुत-से राजाओंके पास घूम लिये। सबने आय-व्यय बता दिया। है नहीं पासमें तो कहाँसे दें? तो कहाँ मिलेगा! एक राक्षसके पास पहुँचे, उसके पास सोना मिला। उससे सोना लेकर आये। पाँच-दस दिन लग गये। उधर उतने दिनमें ब्राह्मणीने, जैसा भोजन मिलता था, वैसा अन्न खाया। जिससे मन शुद्ध हो गया। जब ऋषि सोना लेकर पहुँचे और बताया कि इस तरहसे राजाओंके यहाँ तो धन मिला नहीं। एक राक्षसके यहाँ धन मिला है। अब गहना कराना है, जितना करा लो। तो बोली कि मेरेको गहना नहीं चाहिये। मेरे तो गहना आप हो।

मेरे आपका जितना शृङ्गार है उतना राजा-महाराजाओंका शृङ्गार कहाँ है? राजा-महाराजा भी आपके चरणोंमें गिरते हैं। तो इतना सुन्दर गहना है कहाँ? गहना तो आप ही हो, हमें सोना नहीं चाहिये। पाछा दे आओ, हमें नहीं चाहिये। तो धन इकट्ठा करना यक्ष-राक्षसोंका काम है। धन कमाओ और अच्छे-से-अच्छे काममें खर्च करो। सत्यताके सहित शुद्ध रीतिसे कमाओ और उदारता सहित खर्च करो। इसका सदुपयोग करो। अपना जितना धन है, वह उपयोगमें कैसे आवे? वह भी हितमें कैसे लगे। '**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**' प्राणिमात्रके हितमें रत हो। अपने पास जो कुछ है, धन हो, तन हो, मन हो, विद्या-बुद्धि हो, योग्यता हो, पद हो, अधिकार हो, जो कुछ मिल जाय, उसके द्वारा सबका हित कैसे हो? प्राणिमात्रके हितमें प्रीति होनी चाहिये;

संग्रहमें नहीं। जो कुछ मिला है, अपना सम्पूर्णके हितमें लगाओ, जिससे कल्याण होगा। तो ऐसा भाव ठेठसे, ऊपरसे शुरू करो। अब वहाँसे शुरू करते हैं कि उनकी सेवा करो, उनका आदर करो। मैं तो कहता हूँ छोटा आदरका ही पात्र होता है। अपमानका, तिरस्कारका पात्र होता ही नहीं कभी। वह अयोग्य है कि योग्य, यह देखा नहीं जाता। छोटे बालकको योग्य देखा जाता है क्या? प्यार करते हैं, गोदीमें लेते हैं तो क्या योग्यता देखते हैं कि कितना पढ़ा-लिखा है, गुणवान् है कि बलवान् है, क्या विलक्षणता है? वह छोटा है—यही विलक्षणता है उसमें।

छोटे स्नेहके पात्र

ऐसे जो-जो छोटे हैं उनका आदर करो, तो ठेठ आदर हो जायगा। पर आप तो अभिमान वैसा ही रखो और चाहो कि वे हमारा आदर करें ऐसा कैसे हो जायगा। इसके अतिरिक्त ऐसे भी करो कि दूसरोंको अपने देखो मत। आपलोगोंसे कहना है कि हमलोगोंसे, साधुओंसे, ब्राह्मणोंसे भूल हो जाय; तो हम भूल कर गये तो आपलोग भी भूल करोगे? भूल कौन-सी बढ़िया बात है भाई! इस वास्ते आप तो उदारता रखो। प्यार करो, स्नेह करो, अपनाओ। आज कहते हैं छूआछूतसे अनर्थ हुआ है, छूआछूतमात्रसे नहीं हुआ है। इसमें स्वार्थ-वृत्ति ज्यादा है। हम तुम्हारे घर भोजन कर लेंगे, ऐसे नहीं कि अन्न, वस्त्र, रुपये, पैसे तुम्हें दे देंगे। उनके घर जाकर छाछ पी लेंगे तो घाटा और डाल दिया उनके। क्या फायदा हुआ? सहायता करो। मेरे बचपनमें देखी हुई बात है। देहातोंकी है, ऐसी देखी है मैंने। एक मेहतरके जँवाई आया, वह अपने यजमानके घर जाकर कहता है, 'बापजी

आपरो जँवाई आयो है।' तो म्हारो जँवाई मेहतर होसी? महाराज! बढ़िया चीज, वस्तु, भोजन सब देते कि ले जाओ, जँवाईका सत्कार-पूजन करो। उनके जँवाई आते थे तो रुपया, नारियल देते थे। यह देखी हुई बात है मेरी। जँवाई देवता आया है तो हमारा जँवाई मेहतर होगा क्या? हमारा जँवाई मेहतर नहीं होगा; मेहतर-जँवाई होगा; क्योंकि हमारे हैं न ये। इस वास्ते इनका जँवाई हमारा जँवाई। यह प्रेम था।

राजपूतोंके, अच्छे-अच्छे ठाकुरोंके, जमींदारोंके घरोंकी स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलती थीं। मेरे ऐसे शब्द सुने हुए हैं—'कैसे जाऊँ? भाभीजी बैठी हैं।' आदर करती थी ससुर-जैसा, इतना आदर करती और वे भी महाराज बड़ा प्यार, स्नेह रखते थे। बच्चा खेलता हुआ आता; मेहतरानी आयी है सफाई (अड़वाई)-के वास्ते और बच्चा आता है तो 'देखो! कुँवरजीने ले जाओ म्हारे पासमें आवे।' मनमें बड़ा भारी आदर था। सुख-दुःखमें सहानुभूति रखते थे। दुःख कैसे मिटे? सुख कैसे हो? गीता कहती है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(६। ३२)

उनके दुःख किस बातका है, वह दूर करो। सुखके प्रलोभनमें आप आ नहीं सकते। कब? जब धर्मका ज्ञान होगा। धर्मका ज्ञान कब होगा? जब धर्म बताया जायगा। धर्म बताया कब जायगा? जब आप स्वयं धर्मात्मा बनोगे तब। अपने आचरण और भाव पहले शुद्ध करो। उनको निर्मल बनाओ। उनके निर्मल करनेसे दुनियामात्रकी शुद्धि होगी। सबका भाव ठीक हो जायगा बिना कहे-सुने आप-से-आप ही; एक नीयत शुद्ध होनेसे। इस वास्ते अपने भावोंको निर्मल बनाओ।

बालकोंपर जिम्मेवारी

बालकोंके लिये खास बात होती है। वे समझते हैं, हमारी क्या जिम्मेवारी है? हम तो बालक हैं। ऐसा कभी न समझें, आप खास करके समाजकी नींव हैं, नींव। बड़ी-बड़ी इमारतें उठती हैं, वे सब-की-सब खड़ी रहती हैं आधारशिला बुनियादपर, नींवके ऊपर। वह मजबूत होती है तब ऊपरकी इमारत बढ़िया बनती है। इमारतकी नींवके पत्थर जमीनमें रहते हैं देखता कोई नहीं। ऐसे बचपनको दुनिया नहीं देखती। दुनियाको दीखता है ऊपर आया हुआ विकसित जीवन; परंतु वह विकसित जीवन तब होगा, जब बचपनमें ठीक होगा। बच्चोंको समझना चाहिये कि हमारेपर अभी जिम्मेवारी क्या है? आप पढ़ाई करो, बड़ोंकी आज्ञाका पालन करो, कहना मानो। आज बहुत बड़े दु:खकी बात है कि बच्चोंमें अनुशासनहीनता आ रही है। मानते ही नहीं, उद्दण्ड होते चले जा रहे हैं। अब ऐसे बालक हो रहे हैं। उनको सिखावो—तो क्या सीखेंगे वे? वे कहते हैं हम छोटे कैसे हैं? बड़प्पनका अभिमान प्रारम्भसे भर जाता है। मैं तो कहता हूँ कि जो आदमी समझता है कि मैं पढ़ गया, समझदार हो गया, बड़ा हो गया, उसकी अगाड़ी विकासकी बात तो होती ही नहीं; खतम ही हो गयी। उसका विकास कैसे हो? समझदार तो मैं हो गया। हमें तो विद्यार्थीपना अच्छा लगता है। उमरभर विद्यार्थी रहें। मनुष्य-जन्म विद्यार्थी-जीवन है यह। चौरासी लाख योनियोंमें विद्यार्थी-जीवन है मनुष्य-शरीर।

'एहि तन कर फल बिषय न भाई।' (मानस ७। ४४।१)

यह ब्रह्मविद्या लेनेके लिये विद्यार्थी-जीवन है। छोटे बालक तो विद्यार्थी हैं ही, दोनों तरफसे ही मनुष्य-शरीरकी दृष्टिसे विद्यार्थी और अध्ययनकी दृष्टिसे भी विद्यार्थी।

विद्यार्थियोंपर जिम्मेवारी

अभी जो विद्यार्थी अच्छे बनते हैं, वे ही आगे चलकर अच्छे पण्डित बनते हैं। बचपनमें श्रेष्ठ बनेंगे, वे ही अगाड़ी चलकर श्रेष्ठ बनेंगे। बच्चोंके लिये याद रखनेकी बात बताता हूँ। जितने-जितने महात्मा हुए हैं, जितने महापुरुष हुए हैं वे सब-के-सब पहले बालक थे, बालक। आपको सोचना चाहिये कि हम भी बालक हैं। हम भी वैसे ही बन सकते हैं। तो बड़प्पनका जो अभिमान अपनेमें है, वह तो नहीं होना चाहिये, पर महत्त्वाकांक्षा जरूर होनी चाहिये। अपने जिस जगह हैं, उससे ऊँचे बढ़ें। ऊँचे तभी बढ़ेंगे, जब अपनेको छोटा मानेंगे। ***'जो कुछ थोड़ा सीखे हैं, किसीके होके सीखे हैं।'*** उनसे शिक्षा मिली है, उनसे शिक्षा लेनी चाहिये। आचरण अच्छा बनाओ, सेवा करो, खूब उमंगपूर्वक, उत्साहपूर्वक। बच्चियोंको भी चाहिये कि अपनी माँकी, भाभीकी सेवा करें। लड़कोंको भी चाहिये कि अपने माता-पिताकी, गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करें, उनकी सेवा करें, उनको सुख पहुँचावें।

'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा'

अपने पास और क्या है? सेवा ही कर सकते हैं। न तो ऐसा अलौकिक गुण है जिसके बदलेमें गुरुजी महाराज सिखा दें। न इतना धन है, जो उनको देकर राजी कर लें। सेवा करें, सेवा करना क्या है? ध्यान देना। बालको! असली सेवा क्या है? पढ़ाई करो तो गुरुजीकी सेवा क्या है? जो गुरुजीने पढ़ा दिया, वह ठीक याद हो, सब-का-सब, गुरुजनोंकी सेवा हो जायगी। सभाके बीचमें पूछा जायगा और आप ठीक तड़ातड़ (तुरंत) उत्तर दोगे तो दूर बैठे-बैठे गुरुजी खुश हो जायँगे, प्रसन्न हो जायँगे, धनसे उतने राजी नहीं होंगे। कितनी

बढ़िया बात है, विद्या तो आपको मिले और सेवा हो जाय गुरुजीकी, दोनों बातें बढ़िया।

नमस्कारकी महिमा (उदाहरण मार्कण्डेय)

रोजाना सुबह-शाम माता-पिताके चरणोंमें नमस्कार करो।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

जो रोजाना बड़ोंके चरणोंमें नमस्कार करता है और बड़ोंकी शिक्षा लेकर चलता है, उसके चार चीजें बढ़ती हैं, एक विद्या आती है, एक संसारमें यश-कीर्ति बढ़ती है और एक बल आता है। और एक बात है। उमर बढ़ती है, कितनी विलक्षण बात है।

मृकण्डु ऋषि थे, जिनके मार्कण्डेय हुए। वे नमस्कार करते थे। एक सिद्ध पुरुष वहाँ आ गये, पिताजीने कहा—'बेटा! नमस्कार करो।' तो महाराज देखने लग गये सामने! एक टकटकी लगाकर देखते रहे। पिताजीने पूछा—'महाराज! क्या देखते हो?' 'बच्चा तो अच्छा है, पर इसकी उमर बहुत थोड़ी रह गयी।' तो ऋषिने पूछा—'महाराज क्या करें!' उन्होंने कहा—'सन्त-महापुरुष आवें, ऋषि-मुनि आवें उनके चरणोंमें नमस्कार करवाओ।' सप्तर्षि आ गये। पिताजीने कहा—'नमस्कार करो।' (महाभारतकी कथा है यह) तो उन्होंने नमस्कार किया। उन्होंने 'चिरंजीवी बन जाओ' ऐसा आशीर्वाद दे दिया। पिताजीने पूछा—'महाराज! आपने आशीर्वाद तो दे दिया है, पर देखा नहीं कि कितनी उमर है।' उधर ध्यान दिया तो कहा—'उमर तो कम रह गयी।' पूछा—'तो महाराज, आपके वचनोंका क्या होगा? और हाल क्या होगा इसका'? तो कहा—'भाई! भगवान् शंकरकी सेवा करो।' अब शंकरकी सेवामें लगा दिया उसको। समयपर महाराज! यमराज

खुद भैंसेपर चढ़े हुए लाल वर्णवाले आये, वह डर गया, डरकर भगवान् शंकरको बाँहोंमें पकड़ लिया कि महाराज! यह यमराज आ गया। शंकर प्रकट हो गये त्रिशूल लेकर। 'क्यों? कहाँ ले जाता है तू इसको!' 'महाराज! इसकी उमर खतम हो गयी।' 'देख तो सही चोपड़ीमें कहाँ खतम हो गयी?' देखें तो बाकी है साहब। शंकर करे सो हो जाय। 'हटो यहाँसे'। मार्कण्डेय ऋषि चिरंजीवी हो गये। '**सप्तैते चिरजीविनः**' कितनी विलक्षण बात है। किस बातसे? नमस्कार करनेमात्रसे।

नमस्कारसे रामदास, कर्म सभी कट जाय।
जाय मिले परब्रह्ममें आवागमन मिटाय॥

'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

(महा०, शान्ति० ४७। ९२)

शाठ्येनापि नमस्कारः क्रियते चक्रपाणये।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

भगवान्‌को शठतासे भी नमस्कार कर ले तो उसका कल्याण हो जाय। नम्रतासे सब चीज मिलती है भाई! इस वास्ते रोजाना माता-पिता, गुरुजन सबको नमस्कार करो। बड़ा भाई, बड़ी बहन है उसको भी नमस्कार करो। जो बड़े हैं, पूजनीय हैं, आदरणीय हैं उन्हें भी नमस्कार करो। भाई-बहनोंसे कहना है कि यह नियम तो अपने-अपने घरोंमें डाल ही दो। आप बड़े जब नमस्कार करेंगे तो ये छोटे आप-से-आप नमस्कार करेंगे। '**यद्यदाचरति श्रेष्ठः।**' आपसमें लड़ाई नहीं होगी। गृहस्थीमें साथमें रहना पड़ता है। हम तो साधुलोग हैं।

'मन मिले तो मेला कीजे, चित्त मिले तो चेला।
ज्ञान मिले तो सतगुरु कीजे, नहीं तो भला अकेला'॥

जरा खटपट होते ही तुंबी लेकर चल देंगे, तुम कहाँ जाओगे? इस वास्ते तुम्हारेको तो प्रेम रखना आवश्यक है, प्रेम रहता है नमस्कार करनेसे।

देवरानी रोजाना जेठानीके चरणोंमें नमस्कार करे तो कभी लड़ जाय तो, राँड कह सकती है क्या? देवर चरणोंमें पड़ता है रोजाना आ करके भाभीजीके, तो क्या वह कड़वी जबान कह सकती है? लड़ाई नहीं हो सकती। हो जाय तो टिक नहीं सकती। शामको उनको नमस्कार करो, मिट जायगी। रात्रिमें खटपट हो तो सुबह नमस्कार करो तो मिट जायगी। लड़ाई रखोगे तो नमस्कार नहीं होगा। नमस्कार करोगे तो लड़ाई नहीं रहेगी। यह है नियम। दोनों एक साथ खटेंगी नहीं। आपके घरोंकी लड़ाई मिट जाय। कितनी बढ़िया बात।

काम-धन्धा करे अगाड़ी हो करके; वह कहे मैं करूँ, मैं करूँ। ऐसे ही बालक-बालिकाओंको चाहिये कि काम तो हम करेंगे। बच्चियोंको चाहिये कि सब काम सीखें, सब बातें सीखें। कातना सीखें, गूँथना सीखें, पीसना सीखें, झाड़ू देना सीखें, रसोई बनाना सीखें। सीखोगी तो अगाड़ी जाओगी तथा आपकी और आपके माताकी, कुटुम्बकी प्रशंसा होगी। नहीं तो महाराज सास गाली देगी, गाली। 'माँ राँड सिखाई कोनी इनै' (माँने इसको सिखाया नहीं) बताओ घर बैठे माँको गाली मिले। अगर तुम ऐसा सीख जाओ, घरमें ऐसी चतुराईसे काम-धन्धा करो तो 'वाह-वाह भयी, अच्छे माँ-बापकी बेटी है, बहुत ठीक है, अच्छे घरानेकी लड़की है' ऐसी प्रशंसा करेंगे। तो आपकी प्रशंसा, आपके कन्याकी प्रशंसा, कुटुम्बकी प्रशंसा।

नहीं तो सबका नीचापन होगा। ऐसे आदर करो, प्रेम करो। बड़ोंको तो चाहिये छोटोंको प्यार करें, छोटोंको चाहिये कि बड़ोंकी आज्ञा मानें, हुक्म मानें, आचरण सीखें, अच्छी-अच्छी बातें उनकी सीखें और कहीं कोई बतानी हो बात तो नम्रतासे कह दें।

सुधारका सुन्दर तरीका

हमने सुनी है (पुस्तकोंमें नहीं देखी है)। एक बार युधिष्ठिरजी महाराजने किसी ब्राह्मणको कह दिया कि हम आपको कल-परसों दान देंगे तो भीमसेनने जा करके नगाड़े बजाये। युधिष्ठिरने पूछा, 'नगाड़े किस बातके'? तो भीमसेन बोला 'बड़े आनन्दकी बात है कि परसोंतक आप-हम सब जीते रहेंगे, मौज हो गयी हमारे। आप सत्यवादी हो, आपने कह दिया कि कल-परसोंतक दान देंगे तो कोई मरेगा तो दान कैसे करेगा?' तो खुद भी नहीं रहोगे तो दान कैसे दोगे? इस वास्ते अब तीन दिनतक तो मरेंगे नहीं। बड़े आनन्दकी बात है। युधिष्ठिरने कहा—'भैया ! भूल हो गयी'। 'अब हितकी बात कह दी तो भूल हो गयी' तो बड़ोंको शिक्षा कैसे दी जाय? यह थोड़े ही है कि ऐसा कहो, 'आप झूठ बोलते हैं, आपने कैसे कह दिया'? और खुशी मनाओ।

एक ब्याह करके लड़की आयी अपने घरपर ससुरालमें। लड़का एक ही था, तो एक लड़का, एक सास, एक दादी सास। तो वहाँ जाकर देखा तो दादी सासका अपमान हो रहा है, तिरस्कार हो रहा है। ठोकर मार दे, गाली दे दे, छोरीकी सास। यह देखा तो छोरीको बड़ा बुरा लगा, अब कहूँ कि माँ, ऐसा मत करो, तो कहेगी कि कलकी छोरी आकर उपदेश देती है, गुरु बनती है। अतः ऐसा नहीं कहा

उसने। वह काम–धन्धा सब करके दोपहरमें जाकर दादीजीका चरण चम्पी करे, उनके पास बैठे। अब वह ज्यादा बैठे तो सासको सुहावे नहीं। वह कहती है 'बीनणी! वहाँ क्या करती हो?' 'बोलो! काम बताओ।' 'काम क्या बतावें! वहाँ क्यों जा बैठी', तो बहूने कहा—मेरे पिताजीने कहा है—'देखो बाई। जवान छोकरोंके पास बैठना ही नहीं कभी; छोरियोंके साथ भी नहीं बैठना; बड़े-बूढ़े हों उनके पास बैठना; उनसे शिक्षा लेना।' हमारे घरमें सबसे बूढ़ी ये ही हैं तो और किसके पास बैठें? मैं उनसे यह पूछती हूँ कि मेरी सास आपकी सेवा कैसी करती है? क्योंकि मेरे पिताजीने कहा है बेटा! हमारे घरकी रिवाज नहीं चलेगी वहाँ, वहाँ तो रिवाज तेरे ससुरालकी चलेगी। तो मेरेको यहाँकी रिवाज सीखना है, सीख लूँ।

सासने पूछा—बुढ़ियाने क्या उत्तर दिया? 'वह बोली कि ठोकर नहीं मारे, गाली न दे तो मैं तो सेवा ही मान लूँ। क्या तू ऐसा करेगी'? मैं नहीं कहती हूँ ऐसा। पिताजीने कहा है, 'बड़ोंसे सीखना'। सासजी डरने लग गयी कि जो आचरण करोगे अभी अपनी सासके साथ, वह तेरे साथ आचरण तैयार होने लग जायगा। डर गयी! उसका आचरण सुधर गया। एक जगह कोनेमें ठीकरी इकट्ठी पड़ी थी, 'वीनणी, ये ठीकरी क्यों इकट्ठी की है'? आज तो घड़ा मटकी आपण घणा ही है सासूजीको देवो हो न आप भोजन ठीकरीमें, तो मैं काहेमें दूँगी? इस वास्ते पहले ही जमा कर लिया'! 'तू मेरेको ठीकरीमें भोजन करायेगी। मेरे पिताजीने कहा है तेरे वहाँकी रिवाज चलेगी।' तो सास कहती है 'यह रीति थोड़े ही है' 'तो आप देते क्यों हो'? थाली माँजे कौन, 'थाली माँज तो मैं दूँगी'। 'तो तू थालीमें दिया कर। उठा ठीकरा बाहर फेंक, अपने

क्या करना है'? अब थालीमें भोजन देवे। सबको भोजन देनेके बादमें जो बाकी बचे, वो खिचड़ी-खिचड़ाकी खुरचन और दाल बची हुई जिसमें नीचे काँकरा बचे, अब वे देवे तो बहू देखे। 'वीनणी ! क्या देखें? देखूँ कि बडेरोंको भोजन कैसे दिया जाय'? देखै क्या है? 'ऐसा भोजन बड़ोंको देना चाहिये न'। देनेकी कोई रीति थोड़े ही। तो, पहले 'कुण (कौन) देवे'? तो आज्ञा दे दो 'मैं दे दूँगी'। 'तो तू पहले भोजन दे दिया कर'। 'अच्छी बात?' रसोई बनते ही चट ताजी खिचड़ी, फुलका, साग ले जाकर माँजीको दे दे।

माँजी तो मन-ही-मन आशीर्वाद देने लगी। जीवन सुधर गया माँजीका, बेचारीकी सेवा होने लग गयी। अब बाहर साली (बाहरका कमरा)-में खटिया डाली हुई उसीपर पड़ी रहती बूढ़ी माँजी। वह टूटी हुई खटिया, बन्दनवार होवे ज्यों लटके उसमें मूँज। तो वह बहू देख रही थी। सास पूछे कि क्या देखे? 'निगह करूँ कि माइतोंको खाट कैसी दी जाय'? 'ऐसा दिया थोड़ा जाता है, टूट जानेसे ऐसा हो जाता है। तू बिछा दे दूसरी'। 'आप आज्ञा दो'। अब बढ़िया निवारका ढोलिया लाकर बिछा दिया। कपड़ा धोने दिया तो कपड़ा 'सांगरी-सांगरी होयोड़ा। क्या देखती है'? देखती हूँ कि बुड्ढोंको कपड़ा कैसा दिया जाय'। सास बोली 'फिर वही बात! ऐसा कोई दिया थोड़ा जाता है? यह फट जाता है, तो हो जाता है ऐसा'। बहूने पूछा, फिर वही रहने दें क्या? 'तू बदल दे'। अब महाराज! पथरना, सोड़िया, (बिछौना, रजाई) बदल दिया, कपड़ा बदल दिया। अच्छी तरहसे माँजीकी सेवा करे। अच्छी तरहसे सफाई रखे खूब। अब देखो सासुको शिक्षा कैसे दी जाय? कितनी चतुराईसे दी, अगर उसको वह उपदेश देने लगे तो मान लेगी क्या?

माँ-बापकी सेवा

लड़कियोंको चाहिये कि ऐसी बुद्धिमानीसे अच्छा-अच्छा गुण अपनेमें लावें और स्वयं सेवा करें। सब सेवा करती, सब रसोई बनाती, झाड़ू देती, बर्तन माँजती, सब काम करनेपर भी राजी करना सासको भी और दादी सासको भी। तो ऐसे काम आप करोगी तो उसका असर पड़ेगा। कोरी बातोंसे असर नहीं पड़ता। आचरणका असर पड़ता है। तो ऐसे बच्चोंको भी चाहिये अपने घरोंमें खूब काम करें, उत्साहपूर्वक काम करें। गाय आदि है तो उसका काम करें, घरका काम करें। आज-कलके लड़के बड़े हो जाते हैं तो स्वयं सेवक बन जाते हैं। लाठी लेकर जाते हैं कि समाजकी सेवा करेंगे। स्वयं सेवक हैं वे, अपने ही सेवक हैं वे। जहाँ महिमा होती है, वहाँ काम करेंगे। पिताजी चाहे बीमार पड़े रहें। माँ-बाप बूढ़े हों, बीमार हों तो दवाई भी लाकर नहीं देते। क्योंकि घरमें वाह-वाह करनेवाला कोई भी नहीं है। हम स्वयं सेवक हैं।

हमारे काम पड़ा है। हरिद्वार ऋषिकेशमें रहते हैं तो लड़के आते हैं जवान-जवान। 'कैसे आये? घरसे भागकर आये हैं'। 'अरे कागज तो लिखो कम-से-कम कि हम यहाँ आ गये हैं। वे लोग ढूँढ़ते होंगे, कितना रुपया लगेगा, कितनी चिंता होगी, क्यों आ गये'? 'सेवा करेंगे'। 'माँ-बापकी सेवा करते।' 'माँ-बाप तो स्वार्थी हैं, वे तो अपना काम कराते हैं।' तुम परमार्थी कहाँसे आ गये भाई ? स्वार्थियोंके परमार्थी कैसे जनम गये? अरे! माँ-बापकी सेवा ली है, कर्जा तो उतारा ही नहीं, दान करनेको चले। पहले कर्जा तो उतारो। माँ-बापने किस तरहसे पालन किया है। बड़ा किया है, योग्य बनाया है, पढ़ाया है, खर्चा किया है उनकी सेवा छोड़ देते

हो। दुनियाकी सेवा करेंगे। दुनियाकी सेवा पीछे; पहले माँ-बापकी सेवा। घरवालोंकी सेवा पहले करो। क्योंकि उनका कर्जा है सिरपर। कर्जा तो उतारो कम-से-कम तब सेवा होगी। तो ऐसा अभिमान भर गया कि माँ-बाप तो स्वार्थी हैं, हम तो सेवा करते हैं। वे स्वार्थी हैं तो क्या हुआ तुमने तो उनसे लिया है। दुनियामें चाहे वे अपना स्वार्थ करते हों पर तुम्हारा तो परमार्थ किया है कि नहीं? तुम्हारी तो सहायता की है कि नहीं? ऐसे माँ-बापकी सेवा करो, आज्ञाका पालन करो।

'अग्या सम न सुसाहिब सेवा' मनुस्मृतिका दूसरा अध्याय आप पढ़ो, ये देवता हैं साक्षात्, माँ और बाप। माँ पृथ्वी है, अन्तरिक्ष देवता हैं पिता। इनकी सेवा करनेसे त्रिलोकीकी सेवा हो जाती है, त्रिलोकी तृप्त हो जाती है। इस वास्ते बड़ोंकी सेवा करनेसे भगवान् बड़े खुश होते हैं। आप भजन करोगे, माँ-बापका कहना नहीं मानोगे, गुरुजीका कहना नहीं मानोगे तो भगवान् स्वीकार नहीं करेंगे कि यह अपने माँ-बापका भी नहीं हुआ तो तुम्हारा कबतक होगा भाई यह? क्या भरोसा है इसका? गुरुजन भी महाराज, उसको पसन्द नहीं करते, जो माँ-बापकी सेवा नहीं करता। उनकी सेवा करो।

पढ़ाईका उद्देश्य

पढ़ाई करो तो वहाँ गुरुजनोंकी सेवा करो। आज लड़कोंमें उद्दण्डता आ गयी। पहले तो महाराज! गुरुजन जिसको रखते वह विद्यार्थी रहता और जिसको निकाल देते वह निकल जाता। आज विद्यार्थी बना लेते हैं यूनियन। निकालो हमारे पण्डितजीको निकालो, गुरुजीको निकालो। आज छोरा रखें जिसको, वह तो गुरुजी रहे और वे निकाल दें तो निकल जाय। उनको समझते हैं नौकर। नौकरसे काम होता है विद्या

नहीं ली जाती, विद्या बड़ोंसे ली जाती है। इस वास्ते आज देख लो बड़ी-बड़ी विद्याओंमें, बड़ी-बड़ी परीक्षाओंमें पास हो जाते हैं, पर ज्ञान नहीं है। शास्त्री और आचार्य हो जायँ, मध्यमामें, शास्त्रीमें पास हो जायँ तो आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न बता नहीं सकते ठीक तरहसे।

ऐसे काम पड़ा है। एक पण्डितजी कहते थे, इतना भी ज्ञान नहीं 'संज्ञाप्रकरण' का। पढ़ गये ऊँचे और पास हो गये। तो क्या धुन रहती है? बस, पास हो जायँ। अरे भाई! पास होनेके लिये पढ़ाई नहीं होती है। पढ़ाई करनेके लिये परीक्षा दी जाती है। पढ़ाई करना परीक्षाके लिये नहीं। परीक्षाके लिये पढ़ाई करता है तो याद नहीं रहती है, अभी परीक्षा है। इस वास्ते याद करके दे दी परीक्षा; फिर भूल गये। अरे! पढ़ाईके लिये परीक्षा होती है, जिससे अपनेको संतोष हो जाय, गुरुजनोंको संतोष हो जाय। हमारे संरक्षक महानुभाव हैं, उनको संतोष हो जाय, इस वास्ते परीक्षा देते हैं। पढ़ाई तो बोधके लिये करना है। उस तत्त्वको किस तरहसे समझना है हमें! जो पढ़ गये और दूसरोंको पढ़ा नहीं सकते तो क्या पढ़े? ठीक तरहसे बुद्धिमान् लड़कोंको पढ़ा सको आप, तब तो आपने ठीक पढ़ाई की, इस वास्ते अध्ययन पूरा करो, अच्छी तरहसे। जिस काममें लगो, उस कामको साङ्गोपाङ्ग ठीक तरहसे पालन करो।

मैं तो कहता हूँ बुद्धिमान् मनुष्य अपना समय बर्बाद नहीं करता। विद्यार्थीको तो—

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम्॥

एक क्षण भी निरर्थक न जावे। न जाने दे। महाराज! एक-एक क्षण बड़ा कीमती है। याद रखो, बड़ी अवस्था होनेपर

आपको पूछेंगे कितना बरस पढ़े? बीचमें चाहे पढ़ाई करें, चाहे प्रमाद करें, चाहे बीमार हो गये, चाहे घरपर चले गये, स्कूलमें नहीं गये। यह कोई गिनती नहीं करेंगे। अमुक वर्षसे अमुक वर्षतक इतनी पढ़ाई करी। इतनी पढ़ाई हुई तुम्हारी? क्या उत्तर दोगे? नहीं तो भाई, इतना वर्ष पढ़े, हमारेको पूछ लो इतना पढ़ा है इतने दिनोंमें। लोग भी कहेंगे कि इतने दिनोंमें इतनी पढ़ाई कर ली, बड़ी अच्छी बात। आजकलका कोर्स तो बहुत छोटा है। पढ़ाई बहुत कम होती है, छुट्टियोंमें बहुत समय बर्बाद होता है; विशेष बर्बाद होता है; पर आपलोग सजगतासे रहोगे कि समय एक क्षण भी खराब नहीं करना है। खर्चा अपने शरीरके लिये थोड़े-से-थोड़ा करना है।

कलकत्तामें एक छोरेकी माँग पूरी नहीं हुई, खर्चा ज्यादा किया, माँगा ज्यों नहीं मिला तो जलकर मर गया। बताओ, माँ-बापको कितना दु:ख होता है। अपने खर्चा क्यों चाहिये? माँ-बाप दें उतने खर्चेसे काम चलाओ अपना। खर्चीला जीवन होनेसे आदमी परतन्त्र होता है। बचपनमें खर्चीला होनेसे बहुत ही ज्यादा दु:ख पायेगा उम्रभर। सादगीसे पढ़ा हुआ उम्रभर सुखी रहेगा। हमारे क्या चाहिये? साधारण कपड़ा पहन लिया, रोटी खा ली बस। खर्चा है ही नहीं ऊलफेल (फालतू)। इस वास्ते हरेक भाई-बहनको यह बात चाहिये। बड़ोंकी सेवा करो। ये बड़ी अवस्थावाले हैं न उनमें भी जो माँ-बाप हैं, पूजनीय हैं, आदरणीय हैं, उनके सामने हम भी बालक ही हैं; इस वास्ते हमें अच्छा काम करना चाहिये, जिससे उनकी सेवा बन जाय और वे प्रसन्न रहें। प्रसन्नता लो उनकी, आशीर्वाद लो उनका, जिससे विद्या आदि आवेगी। माता-पिताकी सेवासे, गुरु-सेवासे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हो गये, सन्त हो गये, राजा-महाराजा हो गये, विद्वान् हो गये।

आज्ञा-पालनसे लाभ

हमने ऐसे दृष्टान्त सुने हैं और कुछ-कुछ देखे हैं। कलकत्तामें बहुत पुरानी बात है। दो हजार संवत्से पंद्रह-बीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दादू-पंथी सन्त थे। मैंने उनसे कहा, 'महाराज, आप भी कुछ सुनाओ तो खड़ा होकर बोलने लगे।' अच्छे पण्डित थे। वाल्मीकिका एक श्लोक बोल दिया; अब अर्थ करने लगे तो श्लोक नहीं उठा। दुःखी हो गये। बात क्या है! तो कहा कि मैं पढ़-लिखकर अपने गुरुजीके स्थानपर गया। हमारे गुरुजी भजनानन्दी थे, पढ़े-लिखे नहीं थे, विद्वान् थे नहीं, मैं पुस्तक लिख रहा था। गुरु महाराजके घरमें काम था, 'ईंट-चूना पड़ा है, इतना पत्थर मँगाओ, आदमी बुला लाओ,' ऐसा कहते तो कई बार तो मैंने किया, एक बार कह दिया कि 'यह तो कोई मूर्ख ही काम कर देगा'। गुरुजीने कहा 'तू मूर्ख हो जा'। तबसे यह दशा हो गयी। फिर मैं घबराया चरणोंमें गिरा तो कहा 'इतने वर्षों बाद ठीक हो जायगा'। अब एक-दो वर्ष बाकी है। गुरुजनोंकी राजी लेनेसे फायदा होता है, नुकसान नहीं होगा।

एक आत्मानन्दजी थे वे पढ़े-लिखे थे, पढ़ाते थे। उनके शिष्य नारायण मुनिजी महाराज, नाम सुना होगा, बड़े प्रसिद्ध सन्त हुए हैं। रतलाम आदिके दरबार उनको मानते थे। बड़े सुन्दर-मूर्ति और भव्य थे। मेरे दर्शन किये हुए हैं। गुरुजीके खाँसी-दमेकी शिकायत थी, उन गुरुजीकी सेवा करते। वे प्रसन्न होकर कहते 'बेटा नारायण! अब पढ़, तब पढ़ते, नहीं तो वे सेवामें ही रहते। दमेकी शिकायतमें तो बोलना कम होता ही है। ऐसी सेवा की महाराज! जिसमें इतने नामी विद्वान् हो गये फारसी और संस्कृतके। हिन्दू और मुसलमानोंकी

दोनोंकी सभामें वे सुनाते थे अच्छी तरहसे। गुरु-सेवासे लाभ होता है और गुरुका तिरस्कार करनेसे हानि होती है।

एक कनफटे कृष्णानन्द थे। वे पढ़े नवद्वीपमें, पढ़ करके अपने ही गुरुजीसे कहा—'शास्त्रार्थ कर लीजिये मेरेसे न्यायके विषयमें'। तो गुरुजीने कहा—'जा भूँकता फिरेगा कुत्तेकी तरह'। उन दिनों महामहोपाध्याय केशवानन्दजी महाराज कनखलमें थे। वहाँ वह आया कि आपसे शास्त्रार्थ करूँगा। आप भारत-भूषण हुए हैं और महामहोपाध्याय हैं तो मेरेसे बात कर लीजिये। लोगोंने कहा—'अरे कुत्तेको निकालो, कहाँसे आ गया? निकालो इसे'। तिरस्कार करके निकाला। अब नामी विद्वान् था। शास्त्रार्थमें झड़का दे हरेकको, पर अपमान ही हुआ; तिरस्कार ही हुआ। तो गुरुओंका तिरस्कार करनेसे तिरस्कार होता है।

आप कहते हो कि हमारी वीनणी काम नहीं करती तो तुमने दूसरोंके घरपर वीनणी कैसी भेजी है? छोरीको सिखावे कि 'तू धन तेरा इकट्ठा कर लेना; वह तेरा तेरे पास रह जायगा। जब अलग होओगे तब तो तेरे पास आ जायगा। काम तू अकेली क्यों करे? सभी करो'। अब ऐसे काम-धन्धा तो नहीं करना और धन ले लेना, ये दो महान् पतनकी बातें है। वे सिखा-सिखाकर आप छोरियोंको भेजते हैं, घरोंमें शान्ति होगी कि अशान्ति? उनको यह सिखाना चाहिये, 'ना बेटा ! अपने तो काम करो, जहाँ जाओ, उत्साहसे घरका काम-धन्धा करो, उनकी प्रसन्नता लो'।

ऐसे ही लड़कोंको चाहिये कि उदारता रखो भाई। काम-धन्धा करो, सेवा करो, चीज-वस्तुओंके द्वारा भी सेवा करो, तो कितना बढ़िया काम होगा। ऐसी बात जाननेकी कमी नहीं है करनेकी कमी है। जाननेकी कमी तो कोई जानकार है,

वह दूर कर देगा। पर करनेकी कमीको तो आपको ही दूर करना होगा। उसे काममें लाओ। दूसरोंको समझाते समय तो विद्या आ जाती है महाराज!

पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

(मानस ६। ७८। २)

परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति हि।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते॥

अपना काम आ जाय, तब भूल जाते हैं—यही तो बड़ी गलतीकी बात है।

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।'

(गीता १८। ४५)

ठीक तरहसे बालकों-बालिकाओंको अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। गुरुजनोंकी आज्ञा माननी चाहिये। माता-पिता, गुरुजन हैं—ये महाराज! तीन लोक हैं। ऐसा मनुजीने लिखा है। लड़कोंके लिये यहाँतक लिख दिया कि तीर्थपर जायँ तो उसका फल भी माँ-बापके ही अर्पण करें। अपने लिये धर्म, पुण्य आदि कुछ करना ही नहीं है, केवल माँ-बापकी सेवा करना है। लड़का समझता है कि हम तो परतन्त्र हैं, आप जितने छोटे हो, आप तबतक स्वतन्त्र हो। बड़े बन जाओगे, तब पराधीन हो जाओगे, समाजके, बहुत-से आदमियोंके। आपपर उलाहना आयेगा। अभी छोटे हो तो आपको कौन पूछे? गलती हो गयी तो हो गयी। इस वास्ते स्वतन्त्रता उसका नाम है, जिसमें पराधीनता न हो।

नारायण! नारायण! नारायण!

(दिनाङ्क ९ अगस्त, १९८१)

प्रवचन—२

प्रश्न—पुरुषोंके पुनर्विवाहका विधान क्यों है? स्त्रियोंके लिये क्यों नहीं? ऐसा प्रश्न है।

पुनर्विवाहके विषयमें पुरुषों और स्त्रियोंके लिये एक-सा विधान नहीं है। शास्त्रोंमें पुरुषोंके लिये तो पुनर्विवाहका विधान है, पर स्त्रियोंके लिये पुनर्विवाह करनेका विधान नहीं है। मनुजीने लिखा है कि राजा बेनने स्त्रियोंके लिये पुनर्विवाहकी जो छूट रखी थी, वह शूद्र वर्णमें मानी गयी और किसी वर्णमें नहीं, ऐसी बात मनुजीकी आती है।

विवाहका पवित्र उद्देश्य

वास्तवमें देखा जाय तो विवाह करना कोई खास बात नहीं है। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि मनुष्य-जन्म मिला है परमात्माकी प्राप्तिके लिये। इस वास्ते ब्रह्मचारियोंके दो भेद बताये हैं—एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी और दूसरा उपकुर्वाण ब्रह्मचारी। ये दो विभाग क्यों किये? जो जन्मसे ही परमात्माकी तरफ लग जायँ और उनके यह बात समझमें आ जाय और परमात्माकी ओर ही चलें वे 'नैष्ठिक ब्रह्मचारी' होते हैं। परंतु जो विचारके द्वारा मनको नहीं समझा सके; भोगोंकी इच्छाका त्याग नहीं कर सके, तो वे भोगेच्छाका त्याग करनेके लिये विवाह करें। विवाह सुख-भोगके लिये नहीं करे, त्यागके उद्देश्यसे करे। बिना सुख भोगे अगर त्यागनेमें कठिनता पड़ती हो तो शास्त्रकी विधिसे विवाह करके गृहस्थाश्रममें रहे। जिस दिन वैराग्य हो जाय, उस दिन त्याग कर दे। तो त्याग ही तत्त्व है। यह हमारा सिद्धान्त है; भारतीय संस्कृतिकी रीति है।

मानव-शरीरमें *'एहि तन कर फल बिषय न भाई'।* (मानस ७। ४४। १) मूलमें विचारपूर्वक त्याग न कर सके, उनके लिये यह बताया है कि उपकुर्वाण ब्रह्मचारी होकर फिर विधि-विधानसे स्नातक बनकर ठीक तरहसे विवाह करे। केवल उसका तत्त्व जाननेके लिये, सुख भोगनेके लिये नहीं। आजके युगमें सब लोगोंके लिये कहता हूँ कि आजके युगमें पुनर्विवाह न स्त्री करे, न पुरुष करे। पुनर्विवाह करे ही नहीं। एक बार कर लिया, देख लिया *'माई बाई भाइली भाग पसाड़ली'* बस, खतम हुआ काम। अब भजन-स्मरण करो। परमात्माकी प्राप्ति करो।

पुरुषोंके लिये फिर पुनर्विवाहका विधान क्यों रखा गया? '**लुप्तपिण्डोदकक्रियाः**'। पितरोंको पिण्ड और पानी देनेके लिये सन्तान हो जाय तो फिर पुनर्विवाह नहीं करना चाहिये। सन्तान न होवे तो बड़ोंको पिण्ड-पानी देनेके लिये, वंश-परम्पराकी रक्षाके लिये विवाह कर सकते हैं; इस वास्ते शास्त्रमें इसकी खुली रखी है, परंतु सिद्धान्त भोगका नहीं है, सुखका नहीं है, केवल कल्याण करनेका है। मानव-शरीर मिल गया तो, '**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः**'। (गीता ६। २२) वह सुख प्राप्त करना है जिसके बादमें सुख प्राप्त करना बाकी न रहे। यह खास बात है।

प्रश्न—स्त्रियाँ कुँवारी रह सकती हैं क्या?

ऐसा विधान तो नहीं है। विधान न होनेपर भी त्याग करनेमें कोई पाप नहीं है; परंतु आज-कलकी जो रीति है कि छोरियाँ कहती हैं कि विवाह हम नहीं करेंगी, यह एक तरहसे अन्याय है, पाप है; क्योंकि भोगवृत्ति तो मिटती नहीं। अब विवाह करनेसे परतन्त्रता हो जायगी, इस वास्ते कुँवारे खुले स्वतन्त्र फिरेंगे। तो कुत्तियाँ बहुत स्वतन्त्र फिरती हैं, उनमें और इनमें

क्या फर्क है? कुछ मूल्य नहीं उसका। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करें, उसकी बहादुरी है, वह कोई भाई हो, चाहे बहन हो। कोई भी क्यों न हो। यह है बात खास।

प्रश्न—'कर्म करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है और फलकी प्राप्तिमें स्वतन्त्र नहीं है।' धन चाहनेमात्रसे नहीं मिलता। इसका खुलासा कीजिये?

मैंने यह कहा था कि चाहनेमात्रसे धन नहीं मिलता। 'धनकी चाहना नहीं होनेसे ये निर्धन हैं'। अर्थात् ये धन चाहते नहीं थे, इस वास्ते निर्धन रह गये—ऐसे कितने आदमी मिलेंगे आपको? यह बात नहीं है। धनकी चाहना नहीं हो जिसके, वह निर्धन होता ही नहीं। जिसके वैराग्य है, त्याग है, धनकी चाहना नहीं है, वह निर्धन कभी नहीं होता, वह दरिद्री होता ही नहीं। वह बादशाहोंका बादशाह होता है।

चाह गई चिन्ता मिटी मनवा बेपरवाह।
जिसको कछु नहिं चाहिए सो साहनपतिसाह॥

दरिद्रता तो मनकी है। लोग समझते हैं कि धनके अभावसे दरिद्री है; बिलकुल गलत बात है यह।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः।
श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः॥

जो धनवान् ज्यादा है आपकी दृष्टिमें; वह दरिद्री ज्यादा है कसौटीपर कसनेपर। जैसे, साधारण आदमीके तो सौ-पचास रुपयोंकी भूख होती है, फिर हजार रुपये चाहता है तो नौ सौकी भूख है! एक हजार हो जानेपर दस हजार चाहने लगता है तो अब नौ हजारकी भूख है और दस हजार होनेपर लखपति होना चाहता है तो अब नब्बे हजारकी भूख है। एक लाख रुपये रोकड़में हो जायगा तो अब केवल दस लाखकी इच्छा नहीं होगी। अब

करोड़पति होनेकी इच्छा जगेगी, अब निन्यानबे लाखका घाटा है तो उनमें दरिद्री बड़ा कौन हुआ? जिनके धनकी ज्यादा भूख, वही दरिद्री ज्यादा। धनसे दरिद्रता नहीं मिटती।

'सुन्दर' एक संतोष बिना सठ तेरी तो भूख कभी न भगेगी॥

प्रश्न—अशुभ कर्म कामनासे कैसे होते हैं?

'**काम एष क्रोध एष**' जिसके कामना नहीं होती उसके द्वारा अशुभ कर्म नहीं होते। शुभ कर्म होते हैं—निष्काम-भावसे, जिससे अन्तःकरण शुद्ध, निर्मल होता है। निर्मल अन्तःकरणमें जो विचार आदि पैदा होते हैं, उससे अपना कल्याण होता है। कामना रखनेसे शुद्धि नहीं होती। काम तो कर दिया, पर कामना रख ली भीतर, तो शुद्धि होगी कैसे? पदार्थोंकी, भोगोंकी, परिस्थितिकी इच्छा है न मनमें! तो सकाम-भाव रखनेसे अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। इतने अंशमें शुद्ध होगा कि जो शुद्ध काम किया है विधि-विधानसे, उसका जो फल मिलेगा, उस फलको भोग सकता है, इतनी शुद्धि होती है। जैसे इन्द्र बना तो 'शतक्रतु'—सौ यज्ञ करनेसे इन्द्र बनता है। तो जो इन्द्र बनता है, वह इन्द्रके भोग भोग सकता है। इन्द्रासनपर कुत्तेको बैठा दिया जाय या सुअरको बैठा दिया जाय तो वह इन्द्रका भोग क्या भोग सकेगा? इतनी-सी शुद्धि होती है। और दूसरी बात है ही नहीं। वह इतना काम कर सकता है बस। कोई यदि अशुभ काम नहीं करे और अगाड़ी सावधान रहे। परंतु पहले हम कर्म कर चुके हैं, उनका फल सामने आये तो भोग करके निकाल दो।

प्रश्न—अब हम मुक्तिके मार्गमें लग गये, केवल अपने कल्याणमें ही लग गये। पहले किये हुए बहुत कर्म तो पड़े हैं न? बहुत हैं वे तो। उनकी गिनती नहीं। उनकी क्या दशा होगी?

वह केवल परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही कर्म करता है, उसीको ही चाहता है तो वे सब-के-सब कर्म रोक दिये जायँगे। वे जबरदस्ती फल नहीं देंगे। जब हमारी नीयत कल्याण करनेकी है तो कर्म सब खतम हो जायँगे। भक्तिसे, ज्ञानसे, कर्म-(सेवा-)से तीनोंसे ही वे नष्ट हो जाते हैं।

भक्तिमें साफ कहा—'**सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**'। सब पापोंसे मैं मुक्त कर दूँगा। '**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥**' (४। ३७) ज्ञानरूपी अग्निमें समग्र कर्म भस्म हो जाते हैं। ऐसे ही '**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥**' (४। २३) केवल यज्ञके लिये कर्म करता है तो समग्र कर्म लीन हो जाते हैं। कर्म अगाड़ी खतम हो जायँगे। जब वह साधनमें लगा है तो भजन करते-करते, पूर्ण होनेपर सब खतम हो जायँगे। अधूरा साधन छोड़ेंगे तो वे कर्मफल देनेके लिये आयेंगे। साधनकी ठीक तरहसे वृत्ति नहीं रहेगी तो वह योगभ्रष्टकी स्थितिको प्राप्त होता है। ऐसे योगभ्रष्ट भी दो तरहकी गतिवाला होता है। एक तो स्वर्गादिमें जाकर पीछे लौटनेपर श्रीमानोंके घर जन्म लेता है और एक सीधा ही योगियोंके कुलमें जन्म लेता है उसका जन्म श्रेष्ठ बताया है। '**एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥**' (गीता ६। ४२) ऐसा जन्म दुर्लभतर है। तो जिन योगियोंकी सूक्ष्म वासना रहती है, वे स्वर्गादिमें जाते हैं और यहाँ श्रीमानोंके घर जन्म लेते हैं। जिनकी वासना नहीं रही है और साधन करते हैं साधनमें कुछ कमी रह जाती है, अन्तमें विचलित हो जाते हैं तो वे योगियोंके कुलमें जन्म लेते हैं वहाँ वे मुक्त हो जाते हैं।

मन भगवान्‌में कैसे लगे?

प्रश्न—हम मन भगवान्‌में लगाना चाहते हैं; ध्यान-जप करने

बैठते हैं तो पुराने भोगे हुए भोगोंके संस्कार आते हैं। सुख मिल जाय ऐसी इच्छा भी होती है। इसको कैसे मिटावें?

इसको लोग कहते हैं मनकी चंचलता। साधन करते हैं, मन नहीं लगता। इसका नाम चंचलता है। पहले भोग भोगे हैं, उनके संस्कारोंसे वे पुराने भोग याद आते हैं, अगाड़ी भविष्यमें कुछ करना चाहते हैं उसकी याद आती है। पाठमें बैठे हैं; जप कर रहे हैं; नित्य-नियम कर रहे हैं तो घड़ीकी तरफ देखते हैं कि अमुक जगह जाना है; क्योंकि मन नहीं लगता। बार-बार याद आती है, भूतकाल-भविष्यकालकी बातें याद आती हैं। इसमें मन लगता नहीं, इसको चित्तकी चंचलता कहते हैं। क्या करें होता नहीं। इसमें खूब ध्यान देवें। थोड़ा विस्तार करता हूँ।

आपका मन नहीं लगता तो सबसे पहले मुख्य बात तो यह कहनेकी है कि आप साधन न छोड़ें। बहुत भाई कहते हैं 'क्या करें, राम-राममें मन तो लगता नहीं'। इसमें एक मार्मिक बात है; कृपा करके ध्यान दें और धारण कर लें, तो बहुत ज्यादा आपकी कृपा मानूँगा। मन पहले लग जाय, पीछे भजन होगा—ऐसा कभी नहीं होगा। भजन करते-करते ही मन लगेगा, इस वास्ते मन लगानेके उद्देश्यसे नाम-जप-कीर्तन करते रहो। हरदम साधनमें लगे रहो; विचार करते रहो। भजन करते रहनेमें मन नहीं लगता तो भी लाभ होगा।

एक धनी आदमीने एक आदमीको रखा कि तुम बैठो यहाँपर, दिनभर; जरूरी होगा, तब काम कहेंगे। कभी एक-दो बार काम कह दिया। दिनभर बीत गया, शामतक वह बैठा ही रहा। शामको कहता है 'बाबू पैसे लाओ।' वह पूछता है पैसे किस बातके? 'दिनभर तो बैठा ही था।' 'बाबू! दिनभर बैठा था इस बातके' उसको पैसे देने पड़ते हैं। इस वास्ते

जब एक मनुष्यके कहनेसे बैठ जाय तो बिना काम किये पैसे मिलते हैं। आप भजन करने बैठ जायँगे अच्छी नीयतसे तो क्या ठाकुरजी इतने भी ईमानदार नहीं हैं? क्या आपका यह प्रयास निरर्थक जायगा? आप अपनी तरफसे मन लगानेकी चेष्टा पूरी करें। नाम-जप करें, कीर्तन करें, अपनी तरफसे गलती न करें। फिर मन नहीं लगेगा, इसका दोष आपपर है ही नहीं। मन नहीं लगाते हो, वह दोष आपका होगा। बिना गलती किये हमारेको दोष कैसे लगेगा? दुनियामें बहुत हत्याएँ होती हैं, उनकी हमें हत्या लग जायगी क्या? हम करना चाहते नहीं और करते नहीं; परंतु होती है, तो होनेका फल आपको नहीं मिलेगा। हाँ, विघ्न है जरूर भजनमें; परंतु उससे डरो मत।

मन न लगनेमें कारण

वास्तवमें कारण कुछ नहीं है; काम-धन्धा करते हो तो समय नहीं मिलता है चिन्तन करनेके लिये। भजन-ध्यान करने लगे तो उसमें तो मन लगता नहीं। मनको मिल जाता है वक्त, इस वास्ते सोचने लगता है, आपकी पोल खोलता है। यह क्यों होती है? जो भीतर इकट्ठी पड़ी थी, वह निकलती है। नयी कुछ नहीं होती पुरानी बात है अथवा अगाड़ी करेंगे, यह बात याद आती है। अभी वर्तमानकी है ही नहीं। अब ध्यान देकर समझना है इस बातको। पहलेकी बात याद आती है, वह पुरानी बात है, अभी नहीं है। भविष्यका चिन्तन होता है, वह भविष्यमें होगा, अभी नहीं है। अभी नहीं है, उसकी क्या चिन्ता करते हो? यह बात याद रखना कि अभी नहीं है। पहले थी, अभी नहीं है या अगाड़ी होगी, अभी नहीं है। जो अभी नहीं है, उसकी कोई चिन्ता नहीं। अभी है ही नहीं वह; उसका अभाव है। उसका क्या फल होगा?

दूसरी बात और ध्यान देनेकी है कि आप चिन्तन करते हो पुराना अथवा भविष्यका। जो चिन्तन होता है, उसमें परमात्मा जरूर हैं। 'है' उसको तो आप मानते नहीं। 'नहीं है', उससे आप परेशान हो रहे हैं। 'नहीं है' यह तो 'नहीं' है, ऐसा मान लो और इस चिन्तनमें परमात्मा हैं। भूतकालका चिन्तन है तो उसमें परमात्मा हैं। भविष्यका चिन्तन है तो उसमें परमात्मा हैं। वर्तमानमें भजन करते हो तो परमात्मा हैं। हरदम अखण्ड परमात्मा हैं। इस तरफ लक्ष्य रखो यह खास उपाय है।

भोगे हुए संस्कार कैसे नष्ट हों?

फिर समझ लो। पुरानी कोई भी बात याद आ जाय, घटना याद आ जाय, मन विचलित हो जाय, तो मन रस लेने लगता है तब तो नया कर्म हो जाता है। याद आनेमात्रसे कर्म नहीं होता। इस वास्ते उसकी परवाह मत करो। यह भोगे हुए संस्कार हैं, वे समय मिलनेपर उद्‌भूत होते हैं, पर होते हैं, नष्ट होनेके लिये। आप उनमें सहमत हो जाते हैं तो ये नये कर्म हो जाते हैं। आप सहमत न हों तो मिट जायँगे, मिटनेके लिये ही उत्पन्न होते हैं। इस वास्ते वह घटना अभी नहीं है। अगाड़ी करना है उसको भी आपने विचार करके पकड़ रखा है। पकड़नेके कारणसे भविष्यकी बातें याद आती हैं। वह भी अभी नहीं है।

उसको आप कह दो कि अभी यह काम कर रहे हैं। उसको अभी छोड़ दो; फिर करेंगे विचार—ऐसा करके उसका त्याग कर दो। फिर याद आ जाय तो फिर छोड़ दो। भविष्यवाली बात भी आपकी पकड़ी हुई है। वह भी है नहीं। परमात्मा सबमें है, अभी भी है, भूतकालवाली घटनाओंमें भी है, भविष्यवाली घटनाओंमें भी है। दोनोंका चिन्तन अभी हो

रहा है तो इस समयमें भी है। परमात्मा इन सबमें है, यह बात याद रखो। भजन करते हुए जो याद आ जाय उसमें परमात्मा है, एकदम सच्ची बात। परमात्माकी तरफ लक्ष्य होनेसे संकल्प-विकल्प नष्ट हो जायँगे। जो है, वह सच्ची बात हो जायगी। जो नहीं है, वह तो सच्चा है ही नहीं; उसकी अभी केवल फुरणामात्र—यादमात्र है, वह मिट जायगी। इस वास्ते परमात्मा इसमें है, यह ठोस बात है। इस बातको पकड़ लो; अब दूसरी बात आप-से-आप मिट जायगी।

बुरे संस्कार क्यों पड़ते हैं ?

अगर मनसे भोगोंका चिन्तन करते हुए उसमें सुख लेने लगोगे तो नया संस्कार पड़ जायगा। चाहे भोगोंको भोगते समय मन लगाकर भोगो और चाहे चिन्तन करते हुए मन लगाकर चिन्तन करो। दोनोंमें नये संस्कार पड़ेंगे। वे संस्कार अगाड़ी और तंग करेंगे; फिर याद आवेंगे। इस वास्ते उसमें सुख-दुःख लो मत। अच्छा आया, चाहे मन्दा आया, पकड़ो मत। चाहे अच्छा आवे, चाहे मन्दा आवे, उसमें अपने मनको राजी मत होने दो। मन राजी होता है, तब वे संस्कार पड़ जाते हैं।

मन तो लाखकी तरह, मोमकी तरह है। उसको ऐसा माना है मधुसूदनाचार्यने और कहा है कि लोहा साधारणतया कठोर है; परंतु साथमें तापक द्रव्य हो जाते हैं तो पिघल जायगा। ऐसे ही चित्त कठोर होता है; परंतु तापका संग होनेसे पिघल जाता है। अब वह तापक कौन है? तो बताया है—

कामक्रोधभयस्नेहहर्षशोकदयाऽऽदयः ।
तापकाश्चित्तजतनुस्तच्छान्तौ कठिनं तु तत्॥

काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक, दया आदि ये सात तापक हैं जिससे चित्त पिघलता है। कामना बहुत ज्यादा होती

है और भोग मिलता है तो भोगते समय उसके बड़े संस्कार पड़ते हैं। वर्षोंतक तीस, चालीस, पचास वर्ष हो जायँ, तब भी मानो अभी ही हुई हो, ऐसी घटना दीखेगी; क्योंकि पिघले हुए चित्तमें संस्कार पड़ गये। अब वह कठोर बन जाय, तब भी संस्कार वैसे ही पड़े हुए हैं। जितना अधिक चित्त पिघलेगा, उतना ही जोरदार संस्कार पड़ेगा। ऐसे ही क्रोधके समय कोई घटना घटी है तो वह ज्यादा समयतक याद आयेगी। कारण कि उस समय चित्त पिघल गया, उसमें क्रोधके संस्कार पड़ गये। ऐसे कोई बड़ा भारी भय लगा तो भय लगते ही चित्त पिघलता है, उसमें भयके संस्कार पड़ जाते हैं तो बहुत वर्षोंतक भयकी याद आती है। ऐसे ही मित्रसे अधिक स्नेह होता है और जब आपसमें मिलते हैं तो उसके भी संस्कार पड़ते हैं। ऐसे ही हर्ष-शोक हो जाता है, उसके संस्कार पड़ते हैं। अधिक हर्ष होता है तो किसीके मिलनेका तो वह संस्कार पड़ता है। दया आती है बहुत विशेषतासे तो वे भी संस्कार चित्तपर पड़ जाते हैं।

बुरे संस्कार कैसे मिटें ?

इस वास्ते कहा है—

‘काठिन्यं विषये कुर्याद् द्रवत्वं भगवत्पदे’

(भक्तिरसायन १। ३२)

साधकको चाहिये कि विषयोंके सम्बन्धमें तो चित्तको कठोर बनाये रखे और भगवत्सम्बन्धी बातोंमें, तात्त्विक बातोंमें मनको द्रवित करे। द्रवित चित्तमें वे संस्कार पड़ जायँ। जब द्रवित होता है अन्तःकरण, उस समयमें और सभीको छोड़ देता है, तब रसानुभूति होती है। साहित्य आदिकी रसानुभूति उसीमें होती है। हास्य, करुण, रौद्र, वीर, शृंगार, वात्सल्य, वीभत्स—

ये सात रस होते हैं। रसकी अनुभूति उसीमें होती है, जब पिघला हुआ अन्तःकरण होता है। पिघला हुआ अन्तःकरण तदाकार हो जाता है और दूसरेकी याद नहीं आती। विषय और विषयीकी भी याद नहीं आती। इतना चित्त द्रवित होता है तो उस समय वह रस आता है। वे संस्कार पड़ते हैं साहित्य आदिके लौकिक रसोंसे। वह षड्रस, नवरस होते हैं तो हर्ष होता है भीतरमें, उसका संस्कार पड़ जाता है। ऐसे पुराने संस्कार तंग करते हैं, उनकी याद आती है बार-बार। उसको मूल्य न दें। पुराने संस्कार हैं, अभी नहीं है। 'यह अभी नहीं है', यह अभी नहीं है', 'यह अभी नहीं है'—यह इसका बड़ा भारी मन्त्र है। जब भी याद आवे तो 'ना, यह अभी नहीं है, अभी है ही नहीं'—ऐसे दूर करोगे तो दूर हो जायगा वह रहेगा नहीं। उनमें राग-द्वेष करोगे तो एक नया संस्कार और पड़ जायगा; क्योंकि आपने सुख ले लिया, आपने दुःख ले लिया। भोगते समयमें भी राग किया है, सुख लिया है, वे संस्कार नहीं मिटेंगे। इस वास्ते इसमें साधकको सावधान रहना चाहिये कि हमारा उद्देश्य यह नहीं है।

अगाड़ी भोग भोगनेकी इच्छा हो जाय किसी तरहसे तो उसे हटा दें कि ना, हमारा उद्देश्य यह नहीं है, हमारा लक्ष्य नहीं है। हमें इस मार्गमें जाना ही नहीं है। यह जितना जोरदार दृढ़ निश्चय होगा, चित्त आप-से-आप शुद्ध होने लगेगा। इधर-उधर जाना बन्द हो जायगा, आपका साधन चल पड़ेगा। हम इसके ग्राहक ही नहीं हैं; हमारेको यह करना ही नहीं है। हमें इस मार्गमें जाना ही नहीं है। बहुत बड़ा भारी बल है इसमें। बड़ी ताकत है। साधन करनेवाले भाई-बहनोंको चाहिये, कुछ भी याद आ जाय—अच्छी-मन्दी याद आ जाय तो कह

दो, 'अभी यह है ही नहीं, अगाड़ी ऐसा करना ही नहीं है, इस मार्गमें हमें जाना है ही नहीं', तो स्वाभाविक चित्त शान्त हो जायगा; स्वतः ही शान्त हो जायगा।

मनुष्य तो समझता है कि चित्त खराब है। चित्त खराब नहीं है। खराब स्वयं होता है। चित्त तो अन्तःकरण है। करण कर्ता नहीं होता। कर्ता करण नहीं होता। अन्तःकरण, बहिःकरण करणोंकी क्या शुद्धि, क्या अशुद्धि? कर्ताकी अशुद्धि ही करणमें मालूम होती है। इस वास्ते गीताने कहा—'**इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।**' और '**इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ**'— विषय, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—ये इसके अधिष्ठान (वास-स्थान) हैं '**रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।**'

इसका यह आशय नहीं है कि तत्त्वकी प्राप्ति बिना यह मिटता नहीं। मानो जहाँ परमात्माकी प्राप्ति होगी, वहाँ ही रस मिटेगा, यह व्याप्ति नहीं है; किन्तु परमात्माकी प्राप्ति होनेपर रस रहेगा नहीं, यह भाव है। रसकी निवृत्ति पहले भी हो सकती है। जोरदार वैराग्य होगा तो रसबुद्धि मिट जायगी। इस वास्ते वह रसबुद्धि भीतर है, वह कर्तामें रहती है, वही मनमें, बुद्धिमें, इन्द्रियोंमें, विषयोंमें प्रतीत होती है, है खुदमें। खुदके जब तेजीका वैराग्य होगा, पक्का विचार होगा कि हमें इस मार्गमें जाना ही नहीं है, यह जितना दृढ़तासे निश्चय हो जायगा, उतनी ही इसकी निवृत्ति हो जायगी। थोड़ा दीखे तो उसकी परवाह मत करो, वह चला जायगा। दर्पणमें मुख दीखता है तो ज्ञान रहता है कि वास्तवमें दर्पणमें मुख नहीं है। इसी तरहसे संकल्प-विकल्प आते-जाते हैं, वे दीखते हैं, पर हमारेमें नहीं हैं।

आपमें नहीं हैं तो ये कहाँ हैं? मन, बुद्धि, अहंकारमें हैं।

आपका जो शुद्ध स्वरूप है, उसमें है ही नहीं—यह पक्की बात है। वह शुद्ध स्वरूप है। साधककी दशा कभी सात्त्विक, कभी राजस, कभी तामस होती है। ऐसे ही जाग्रत् ,स्वप्न और सुषुप्ति—ऐसी अवस्थाएँ आती हैं, दशाएँ होती हैं। ऐसी परिस्थिति आती है तो परिस्थितियाँ बदलनेवाली होती हैं। ये घटनाएँ बदलनेवाली होती हैं। दृश्यका सम्बन्ध आने और जानेवाला होता है, इस वास्ते भगवान्ने कहा—

'आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व' (२।१४)

ये आने-जानेवाले हैं, इनको तुम सह लो। मानो इसमें तुम खुद घबराओ मत। ये तो अन्तःकरणमें आते हैं। आपमें नहीं आते हैं। यह बात थोड़ी बारीक है; परन्तु इसको आप ध्यान देकर बड़ी सुगमतापूर्वक समझ सकते हो।

समता कैसे रहे?

गीतामें समताकी बड़ी भारी महिमा गायी है। **'समत्वं योग उच्यते'** समताका नाम ही योग है। **'समदुःखसुखः स्वस्थः'** बहुत वर्णन किया है। ज्ञानयोगमें, कर्मयोगमें, भक्तियोगमें भी समताका खूब वर्णन है। वह समता कैसे हो? बहुत सीधी बात, बड़ी सरल बात; सब भाई समझ सकते हैं। ध्यान दें आपलोग। आपके सुखदायी घटना घटती है उस समय आप रहते हो कि नहीं? आप अगर नहीं रहते तो सुख-दुःखका अनुभव कौन करेगा? ऐसे दुःखदायी-से-दुःखदायी घटना घटती है तो उस समय भी आप रहते हो कि नहीं? आप नहीं रहते तो दुःखदायी घटनाका अनुभव कौन करेगा? सुख और दुःख तो बदलते हैं, पर आप बदलते हो क्या? तो **'पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते'** (१३। २१) **'पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते'**; (१३।२०) सुख-दुःख भोगनेमें हेतु बनता

है कौन? '**पुरुषः प्रकृतिस्थः।**' सुखके साथ, दुःखके साथ दोनोंमें आप वही रहे। सुख-दुःख दोनोंके विभागका ज्ञान आपको कैसे हुआ? आपको ज्ञान होता है, तो सुखके समय भी आप रहते हैं और दुःखके समय भी आप रहते हैं। आप सुख-दुःखके साथ मिल जाते हैं तो सुखी-दुःखी हो जाते हैं। नहीं तो '**समदुःखसुखः स्वस्थः**' अगर '**स्व**' में स्थित रहे तो सुख-दुःख समान रहेंगे। आपपर असर नहीं डालेंगे। आपपर असर तभी डालते हैं, जब आप उनमें तल्लीन हो जाते हैं; एक हो जाते हैं। तो '**समदुःखसुखः स्वस्थः**' और '**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते**' उसमें उसका साथ मत करो।

आपका स्वरूप सम है, हरदम आप रहते हो। सुखदायी, दुःखदायी घटना घट जाय तो उन दोनोंमें आप रहते हो। अपनी तरफ देखो; अवस्थाकी तरफ मत देखो। परिस्थितिकी तरफ मत देखो। क्रियाओंकी तरफ मत देखो। अपने-आपकी तरफ देखो, तो वे मिट जायँगे। यह देखनेकी विद्या थोड़ा-सा अभ्यास करनेसे हाथ लगती है और वह हाथ लग जाय, अभी। मैंने कह दिया इतनेमात्रसे। साधक है, बुद्धिमान् है, तो उसके हाथ लग जायगी। नहीं तो समय पाकर आ जायगी। सच्ची बात है यह।

अब इसमें थोड़ा-सा विस्तार करके और बात बतावें। ध्यान दें कि आप और आपकी अवस्था, आप और आपकी परिस्थिति, आप और आपकी दशा, आप और आपकी वस्तुएँ। ये दो हैं, एक नहीं हैं। यह खास जाननेकी बात है। आप एक रहते हैं; परिस्थिति बदलती है; घटना बदलती है; दशा बदलती है; व्यक्ति बदलते हैं; वस्तुएँ बदलती हैं। आप एक रहते हो। तो आपकी ये चीजें हैं नहीं। न आपमें हैं, न आप

इनमें हो, न आपका सम्बन्ध है। तीनों बातें नहीं हैं। इनमें आप नहीं, आपमें ये नहीं, आपके साथ इनका नित्य-सम्बन्ध नहीं। अगर नित्य-सम्बन्ध हो तो सुखी आदमीको दुःख कैसे होगा? सुखमें ही स्थित रहेगा। दुःखी होनेवाला सुखी कैसे हो जायगा? दुःखमें ही स्थित रहेगा। परंतु '**आगमापायिनोऽनित्याः**' भगवान् कहते हैं—'भैया, ये तो आने-जानेवाले हैं। आना हुआ, सम्बन्ध हुआ, सम्बन्ध-विच्छेद हुआ। नित्य रहते ही नहीं।' '**तांस्तितिक्षस्व**'—अपनेमें विकार क्यों लाते हो? आप सुख-दुःखके जाननेवाले हो। सुखको भी जान लिया; दुःखको भी जान लिया। तो जाननेवाले तो आप एक ही रहे न।

बड़ी भयंकर घटना घटी। किसी आदमीका जवान बेटा मर गया, उसका समाचार आया कि अमुक जगह गया था, लड़का मर गया और एक समाचार आया कि जो आपका दूसरा लड़का रहता था, उसके लड़का जन्म गया। पोतेके जन्मका समाचार मिलनेपर खुशी हुई। बेटा मर गया तो दुःखी हुए। ये सुख-दुःख दो हुए न; परंतु आपका जानना जो है, बेटेकी मृत्युका ज्ञान और पोतेके जन्मका ज्ञान—इस ज्ञानमें क्या फर्क आया? जाननामात्र तो एक ही हुआ न। जाननेके विषय दो हुए। जानना एक हुआ। जब विषय दो होनेपर जाननेमें ही फर्क नहीं तो जाननेवालेमें फर्क कैसे आया? आपमें फर्क नहीं है। आप पोतेके साथ लगकर खुशी मनाते हैं, बेटेके साथ चिपककर 'बेटा मर गया'—इसका शोक मनाते हैं। ऊपरसे भले ही शोक मनाओ चाहे उत्सव मनाओ, मनमें समझो कि बेटा न तो पहले था, न अब है और न हमारे साथ अगाड़ी रहेगा। यह पोता पहले नहीं था, अब जन्मा है, साथ यह भी नहीं रहेगा। यह अपनी आयु लेकर आया है। हम भी अपनी आयु लेकर आये

हैं। हमारा-इसका सम्बन्ध नहीं है। सच्ची बात यह है। सच्ची बातको तो पकड़ते नहीं, झूठी बातको पकड़कर सुखी-दुःखी मुफ्तमें होते हैं।

समता स्वतःसिद्ध है

सत्संगद्वारा क्या होता है? पैसे नहीं मिलते, दुःख मिटता है। आपको असली बात बतायी जाती है कि आपके साथ इनका सम्बन्ध नहीं है। सच्ची बात है, उसको पकड़ लो तो दुःख मिट जायगा। लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये मिलनेसे भी दुःख नहीं मिटता। दुःख इस बातसे मिट जाता है; टिकता ही नहीं। ये तो आने-जानेवाले हैं। बिलकुल अपना अनुभव है, आप वे ही हो। बाल्यावस्था आयी तो आप वे ही हो, जवान अवस्थामें आप वे ही हो, वृद्धावस्थामें आप तो वे ही हो। यह आपका ज्ञान है कि नहीं? आपका एक ज्ञान है कि मैं वही हूँ। परिस्थिति वह नहीं है, अवस्था वह नहीं है; पदार्थ वे नहीं हैं; घटना वह नहीं है; स्थिति वह नहीं है; भाव वे नहीं हैं, संकल्प-विकल्प वे नहीं हैं। आपके सिद्धान्त वे नहीं हैं, जो बचपनमें थे। वे सब-के-सब बदले हैं, पर आप नहीं बदले हो। आप और आपकी परिस्थिति, आप और आपकी अवस्था, आप और आपकी दशा—ये दो हैं। केवल इस बातको आज आप मान लें। समझ लें तब तो निहाल ही हो जायँ। शंका हो तो फिर पूछ लेना।

आप और आपकी अवस्था, आप और आपकी परिस्थिति, आप और आपके जन, आप और आपकी वस्तु, आप और आपका घर—ये दो हैं। एक नहीं हैं। आप वे ही रहते हो; ये बदलते हैं। ये बदलनेवाले अलग हैं। आप एक रहनेवाले अलग हैं। ध्यान देकर आप समझें। भाई-बहनो! थोड़ी बात

बारीक है, पर बड़ी सरल और सीधी है। यह तो आपकी–हमारी सबकी भोगी हुई है। अवस्थाएँ बदल गयीं। खुद आप कहते थे कि मैं बच्चा हूँ। बालक हूँ। आज कह सकते हो कि मैं बालक हूँ? बालकपना आपने कब छोड़ा? कोई तारीख हो तो बताओ कि अमुक तारीखसे हमने बचपन छोड़ दिया। आपने नहीं छोड़ा; वह सामने होकर निकल गया। जब बचपन निकल गया तो क्या जवानी टिकेगी? क्या वृद्धावस्था टिकेगी? रोगी अवस्था टिकेगी? नीरोगी अवस्था टिकेगी? संकल्प–विकल्प टिकेंगे? चाहे बाहरकी परिस्थिति हो, चाहे भीतरकी परिस्थिति हो। सब बहती है, बहती। दरवाजेपर खड़े हो जायँ, मोटरें खूब आवें तो खुशी मनावें कि अहा! मौज हो गयी आज! कितनी मोटरें आ गयीं। दूसरे दिन खड़े रहें, मोटर एक भी नहीं आयी तो रोने लगे। आज तो मोटर नहीं आयी। धूल नहीं उड़ी तेरे हर्ज क्या हुआ? अब रोने लग गये। ऐसे बेटा, पोता, धन हो गया तो खुश हो गये। चला गया तो दु:खी हो गये। यह है नहीं, था नहीं, रहेगा नहीं। अब धूल ज्यादा उड़ गयी तो उससे ज्यादा खुशी। बेटा मर गया, पोता मर गया, धन चला गया! अरे चला गया तो जानेवाला ही गया है। बिना जानेवाला कैसे गया? जो चला गया वह रहेगा कैसे? वह तो जानेवाला ही है।

अपने–आपमें स्थित होना

इस वास्ते आप जरा ‘स्व’ में स्थित हो जायँ। अपने–आपमें, जो आप वास्तवमें स्थित हैं। उसमें तो आप स्थित रहते हैं। अपने–आपमें स्थिति स्वत: है आपकी। इसको केवल सँभालना है। ये ‘**आगमापायिन:**’ आने–जानेवाले हैं। आप और आपकी वस्तुएँ अलग हैं। आप और आपकी परिस्थिति अलग है। आप और

आपकी अवस्था अलग है। आप और आपकी दशा अलग है। इसमें यह परिवर्तन हो रहा है। संकल्प-विकल्प मनमें होते हैं, अन्तःकरणमें होते हैं। कारण आप नहीं हो। इनके संकल्प-विकल्प आपमें नहीं हैं। आने-जानेवाले हैं। आप इनको देखनेवाले हो, तभी तो तरह-तरहकी घटनाओंका अलग-अलग भोग होता है, अगर आप नहीं रहते तो अलग-अलग घटनाओंका भोग कौन करता? पर आप इनके साथ मिल करके भोगी बन जाते हो। अगर इनके साथ न मिलो तो योगी हो और मिल गये तो भोगी।

भोगी ही सुख-दुःख भोगता है, योगी तो '**समदुःखसुखः स्वस्थः**' स्वस्थ रहता है। बिलकुल अलग रहते हो आप। आप तो अलग ही होते हो; हो ही अलग। बनावटीपनेमें साथ हुए हो। बनावटीपना छोड़ा और आपकी स्थिति हो जायगी। बोलो क्या फर्क है इसमें? यह तो ऐसा ही होता है। आता है और जाता है। यह तो संसारका स्वरूप है। '**सम्यक् प्रकारेण सरतीति संसारः।**' चलता रहे उसका नाम संसार है। '**गच्छतीति जगत्**' जो जाता रहे। वह जाता रहता है आप रहनेवाले हो।

मेरी एक प्रार्थना है। मेरा एक निवेदन है; आप ध्यान दें। मिल भी जाय, दुःख भी हो जाय तो भी यह बात याद रखो कि हम इनके साथी नहीं हैं। यह बात सच्ची है। मिलनेवाली बात कच्ची है, नहीं मिलनेवाली बात याद रखो तो मिलनेपर भी दुःख नहीं होगा। आज दुःखी हो भी जाओ तो घबराओ मत। मेरेपर सुख-दुःखका असर पड़ जाय तो कोई बात नहीं। यह असर पड़ गया, यह चला जायगा, रहेगा नहीं। इतनी-सी बात याद रखो। इसमें क्या कठिनता है, बताओ? सुखदायी परिस्थिति आयी तो आ गयी, दुःखदायी परिस्थिति भी आयी तो आ गयी। आयी और गयी। इसमें हमारे क्या

लगता है? केवल इतना-सा खयाल रखो कि ये आने-जानेवाले हैं। हम हैं रहनेवाले। हमारे क्या फर्क पड़ता है इसमें? आ जाय तो अच्छी बात; चली जाय तो अच्छी बात। आपके फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ भी जाय तो कोई परवाह नहीं। पर याद तो रखो कि मैं तो वही रहता हूँ।

सुखके समयमें भी, दुःखके समयमें भी आप जो एक रहते हो उसका नाम '**समता**' है। समतामें स्थिति स्वतः आपकी है। मनुष्य समझता है कि समता बड़ी कठिन है। समता कठिन है तो क्या विषमता सुगम है? विषमता तो आपकी बनायी हुई है। समता तो स्वतःसिद्ध है; मिटती नहीं। उसमें क्या कठिन है? समता तो स्वतःसिद्ध है।

'**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥**' (५। १९) इस वास्ते '**न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्॥**' (५। २०) प्रियको प्राप्त करके राजी मत होओ, अप्रियको प्राप्त करके दुःखी मत होओ। केवल इतनी बात है। आप सुखी-दुःखी होते हो, यह गलती होती है। पहले गलती हो जाय तो भी परवाह नहीं; मिट जायेगी; परंतु आप न सुखको पकड़ो, न दुःखको पकड़ो। आप इनसे अलग हो और ये आने-जानेवाले हैं। आने-जानेवालेको हम क्यों पकड़ें? यह आ गयी तो बड़ी खुशीकी बात; नहीं आयी तो बड़ी खुशीकी बात। हम अपने दरवाजेपर खड़े हैं। बेटा, पोता बहुत हो गया तो बड़े आनन्दकी बात। मर गये तो बहुत अच्छी बात। जनम गये तो जन्मकी विधि है वो कर दो। इस प्रकार समतामें आपकी स्थिति स्वतः रहती है।

नारायण! नारायण! नारायण!

(दिनाङ्क २७ जुलाई १९८१)

प्रवचन—३

परमात्मतत्त्वकी नित्यता

भगवान्‌की ओर चलनेमें इन्द्रियोंकी, शरीरकी, मन-बुद्धिकी आवश्यकता नहीं है। परमात्माकी तरफ चलनेके लिये 'खुद' की आवश्यकता है। कोई मूक हो, बहरा हो, कैसा ही लूला-लँगड़ा क्यों न हो! भगवान्‌की तरफ खूब मस्तीसे चल सकता है। संसारमें योग्यताको लेकर अधिकार होता है। भगवान्‌के यहाँ केवल चाहनामात्रसे अधिकार होता है। यहाँ योग्यताकी कोई कीमत नहीं, कैसा है? कितना पढ़ा-लिखा है? कैसा शरीर है? किस वर्ण, देश, आश्रम, सम्प्रदायका है कोई जरूरत नहीं। आपका भाव चाहिये। '**भावग्राही जनार्दनः।**' खास बाधा क्या है? इसे आप सुनें, जो मैं बार-बार कहता हूँ। उत्पत्ति-विनाशका आदर करनेसे नित्य-तत्त्वका निरादर हो जाता है। बस, उत्पन्न और नष्ट होनेवाली चीजोंको हम बड़ी मान लेते हैं—यही बाधा है। इनका उपयोग बाधा नहीं। ये वस्तुएँ बाधा नहीं। रुपये हो जायँ, पदार्थ हो जायँ तो कोई बाधा नहीं। न हो तो कोई बाधा नहीं। हृदयमें इनका महत्त्व देकर इनको बहुत बड़ी मान लेते हैं। ऐसे भगवान्‌का मूल्य घटा देते हैं, यह बाधा है खास।

यह जो बात समझानेके लिये कही थी कि हम चीजोंको ही देखते हैं तो चीजें दो नम्बरमें दीखती हैं, प्रकाश पहले नम्बरमें है। चीजोंके अधीन वह प्रकाश नहीं है। प्रकाशके अधीन वे चीजें दीखती हैं। सबसे पहले प्रकाश और पीछे चीजें दीखती हैं, यह दिया था दृष्टान्त। तात्पर्य यह है कि किसी चीजका हमें ज्ञान होता है, हमें याद आती है तो पहले एक प्रकाशमें, एक ज्ञानमें याद आती है। हम पढ़ाई करते हैं, समझते

हैं, वह भी किसी ज्ञानमें समझते हैं। वह भी ज्ञान है। हर एक काम आप करेंगे तो पहले उसका ज्ञान होगा। ज्ञान होनेसे उस विषयमें प्रवृत्ति होती है। वह जो ज्ञान है, वह परमात्माका स्वरूप है, वह वास्तविक ज्ञान है। सूर्यका, चन्द्रमाका, अग्निका, तारोंका, बिजलीका, जुगनूका जो ज्ञान है, यह सब भौतिक ज्ञान भौतिक प्रकाश है। इससे ऊँचा इन्द्रियोंका प्रकाश है। इन्द्रियोंके द्वारा हम चीजोंको जानते हैं, नेत्रद्वारा देखते हैं, त्वचासे स्पर्श करते हैं कानोंसे शब्द सुनते हैं, रसनासे रस लेते हैं, नासिकासे गन्ध लेते हैं, तो यह जो ज्ञान होता है न—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका ज्ञान। इस ज्ञानको प्रकाशित करनेवाली इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियोंको प्रकाशित करनेवाला मन है। मन अगर दूसरी जगह रहता है तो वह ठीक नहीं होता। जैसे, अभी मैं बोला, आपने सुना नहीं, मन चला गया दूसरी जगह ही। तो क्या कहा? पता नहीं। मन नहीं लगनेसे जय रामजीकी। इस वास्ते इनको प्रकाशित करता है मन। मनको प्रकाशित करती है बुद्धि। बुद्धिको प्रकाशित करता है स्वयं और स्वयंको प्रकाश मिलता है परमात्मासे। वह ज्ञान हर समय रहता है।

आपको नींद आती है तो भी परमात्मा वैसे-के-वैसे जागते हैं। आप जागते हैं तो भी परमात्मा वैसे-के-वैसे जागते हैं। आपको स्वप्न आता है तो उसमें भी परमात्मा वैसे-के-वैसे ही जागते हैं। आपके मनमें विचार आते हैं, उन विचारोंको भगवान् जानते हैं। मनमें कुछ भी खटपट होती है, उसको भगवान् जानते हैं। भगवान् सब बातोंको जानते हैं। वह ज्ञान है, केवल शुद्ध ज्ञान। उस ज्ञानके अन्तर्गत अनन्त सृष्टि फैल रही है। स्थिति हो रही है और लीन हो रही है। वह प्रकाश है, ज्यों-का-त्यों निरन्तर है। उसीको सच्चिदानन्द कहते हैं। वह सत्य होनेसे सत्

है। ज्ञान होनेसे चित् है। आनन्द–ही–आनन्द है। दुःखका लेश भी नहीं है वहाँ।

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥

(मानस १। ११६। ५)

लवलेश भी दुःख नहीं, सन्ताप नहीं, जलन नहीं। ऐसा आनन्द–स्वरूप है। वह सबसे पहले है और सबके खत्म होनेपर भी रहता है, सब सृष्टिके रहते हुए भी वह है, ज्यों–का–त्यों रहता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसमें कोई घट–बढ़ नहीं होती।

वह ज्योतियोंका ज्योति है सबसे प्रथम भासता।
अद्वैत सनातन सर्व विश्व प्रकाशता॥

वह ज्योतियोंका ज्योति सबका कारण भगवान् है। इस तरफ लक्ष्य रखो आप।

हरेक काम करते हो तो आपका भी ज्ञान पहले होता है, पीछे वस्तुओंका ज्ञान होता है, तो परमात्माका ज्ञान पहले है, सबके रहते हुए है और सबके लीन होनेपर भी रहता है। सबके मिट जानेपर भी रहता है, बन जानेपर भी, बिगड़ जानेपर भी, परिवर्तनपर भी वह प्रकाश है, ज्यों–का–त्यों रहता है। उस प्रकाशको प्राप्त करना ही जीवका काम है। इसका खास कर्तव्य है। उस प्रकाशमें स्थित हो जाय तो बस, निहाल हो गये, मनुष्य–जन्म सफल हो गया। यह इतनी बात भी आपके–हमारे सामने आ गयी कि सबका प्रकाश करनेवाला, सबका आधार, सबका आश्रय, सबको सत्ता, स्फूर्ति देनेवाला, सबको शक्ति देनेवाला, सबकी रक्षा करनेवाला, सबकी सहायता करनेवाला, सबका भरण–पोषण करनेवाला परमात्मतत्त्व सब जगह, सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तुओंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें, सम्पूर्ण अवस्थाओंमें है,

ज्यों-का-त्यों परिपूर्ण है। उसमें स्थिति हो जाय तो फिर कुछ भी करना, जानना, पाना बाकी नहीं रहेगा।

परमात्म-प्राप्तिमें खास बाधा

अब प्रश्न है कि उसमें स्थिति नहीं होती। उसमें कारण क्या है? सज्जनो! बार-बार सुनना भी अच्छा है, बार-बार कहना भी अच्छा है, पर वास्तवमें उसमें स्थित होना बढ़िया है। उसे ठीक हृदयंगम करें, उसका आदर करें। उसको महत्त्व दें। गलती क्या हो रही है? अब इस बातको आपलोग विशेष ध्यानसे समझें। हम जानते हैं कि लड़का पैदा हो जाता है और मर जाता है, धन आता है और चला जाता है, वस्तु मिलती है और अलग हो जाती है। ये जितनी चीजें हैं इनका भरोसा मनमें कर रखा है, बस, यह बड़ी भारी गलती है। मोटी गलती, सबसे बड़ी गलती, खास गलती। इन चीजोंको आधार मान रखा है, इतने रुपये हों तो मैं ठीक हो जाऊँ। रुपये चले जायँ तो मेरी क्या दशा होगी? इतना कुटुम्ब नहीं रहेगा तो मेरी क्या दशा होगी? यह अवस्था नहीं रहेगी तो मेरी क्या दशा होगी? बीमार हो जाऊँगा तो मेरी क्या दशा होगी? अरे भाई! ये सब तो जानेवाले ही हैं। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंके अधीन क्या हो गया? यह तो सामने देखते-देखते उत्पन्न और नष्ट होते हैं न। आते हैं और जाते हैं कि नहीं! ये तो बदलते हैं न। इनके आने-जानेमें आप सुखी-दुःखी क्यों होते हैं? आ जायँ तो इनका उपयोग करो, चले जायँ तो भी उनका उपयोग करो। हमारे चाहिये ही नहीं। मिल गयी है तो अच्छी तरहसे काममें लाओ। सेवा करो, उपकार करो, हित करो। चली जाय तो अच्छी बात। भगवान्की मर्जी। ये तो आने-जानेवाले ही हैं।

भगवान् सबसे पहले यह बात बताते हैं गीताजीमें कि भाई!

आने-जानेवाले हैं। **'देहिनोऽस्मिन्यथा देहे'** शरीरधारीके इस देहमें **'कौमारं यौवनं जरा'** कौमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था आती है। अब बालकसे जवान हो गया तो घरमें लोग रोते नहीं। क्या करें? छोरा जवान हो गया। जवानसे बूढ़ा हो जाय तो रोते नहीं सब मिलकर कि क्या करें यह तो बूढ़ा हो गया। बीमार हो जाता है तो बीमारी कैसे दूर हो? उद्योग करते हैं। पर बीमार क्यों हो गया, क्या करें? पाँच, सात, दस मिलकर रोवें। क्यों रोते हो कि बीमार हो गया। यह तो होता है। रोनेसे क्या हो? अपना काम उद्योग करो। इसकी बीमारी दूर कैसे हो? इसको आराम कैसे मिले? इसका दुःख दूर कैसे हो? ऐसा उद्योग करना आपका काम है। उद्योग करनेपर यह ठीक हो जाय तो अच्छी बात, न हो तो हम क्या करें इसमें रोनेकी जरूरत नहीं। रोओगे तो इलाज नहीं होगा। सेवा नहीं कर सकोगे। व्याकुल हो जाता है, वह ठीक काम नहीं कर सकता। तो नुकसान ही होगा। ये तो आने-जानेवाले हैं।

प्रत्येक परिस्थितिमें सम रहें

सज्जनो, माताओ, बहनो! जरा आप ध्यान दो, थोड़ी कृपा करो। यहाँ सत्संगमें कोई पैसे नहीं मिलते। यहाँ कोई धन नहीं मिलता। माल नहीं मिलता, पर इतना बढ़िया माल मिलता है कि सदाके लिये सब निहाल हो जाओ। आज अभी इस बातसे ऐसा समझ लो, इस बातको मान लो, हृदयमें धारण कर लो कि भाई संसारकी वस्तु, परिस्थिति, घटना बदलनेवाली है। यह तो बदलेगी ही। एक समान किसीकी अवस्था नहीं रही। भगवान् राम अवतार धारण करते हैं। उनका शरीर कर्मजन्य नहीं होता है। हमारी तरह जन्मने-मरनेवाले नहीं हैं। स्वतन्त्रतासे प्रकट होते हैं। उनके भी आप जरा अवस्था देखो। वे कहते हैं—

यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति।
प्रातर्भवामि वसुधाधिप चक्रवर्ती
सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी॥

हमने मनसे भी विचार नहीं किया कि हम जंगलमें रहेंगे। वनवास हो गया, बताओ कितनी विचित्र बात? और चिन्तन नहीं किया, वह तो आ गया। जो विचार किया था, वह दूर चला गया। सुबह ही राजा बन जाऊँगा, उसकी जगह चौदह वर्षका वनवास हो गया। तो विचार कुछ और ही करता है, होता कुछ और ही है। इसमें क्या चिन्ता करें? ***'तू नर और विचार करे, तेरो विचार धर्यो ही रहेगो।'*** यह तो विचार धरा ही रहेगा भाई! इस वास्ते विचार करो, पर उसकी चिन्ता मत करो। काम करना है, विचार कर लिया, हो गया तो बड़ी अच्छी बात न हो तो बहुत ही बढ़िया बात। अब मनचाहा न हुआ तो दुःखी हो जाते हैं, अमुकसे मिलना है, मिलना नहीं हुआ तो दुःखी हो जाते हैं। अपने कोई काम नहीं हुआ तो दुःखी हो गये। दुःखी क्यों होते हो भाई? उद्योग करो, पुरुषार्थ करो, यह भी सिद्ध हो जाय तो बड़ी अच्छी बात न हो जाय तो अच्छी बात। यह गीताकी शिक्षा है। यह महान् धन है। बड़ी भारी पूँजी है। '**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥**' (गीता २।४८) प्राणायाम करो, श्वास रोको, मन लग जाय, समाधि लग जाय इसको योग कहते हैं लोग। पर गीता कहती है सिद्धि-असिद्धिमें सम रहो, यह योग है। कितनी बढ़िया बात। चलते-फिरते, काम-धन्धा करते, गृहस्थमें रहते हुए हानि-लाभमें दुःखी-सुखी नहीं होना। यह योग है, योग। प्राणायाम करके नाक पकड़कर करना इतना ऊँचा योग नहीं है। समाधि लगाना इतना ऊँचा नहीं है।

लोग कहते हैं मन नहीं लगता। मन लगना न लगना इतनी ऊँची चीज नहीं है। यह ऊँची चीज है कि सिद्धि–असिद्धिमें सम रहना। सिद्धि भी टिकनेवाली नहीं और असिद्धि भी टिकनेवाली नहीं।

रज्जब रोवे कौन को हँसे सो कौन विचार।
गये सो आवनके नहीं रहे सो जावनहार॥

जो मर गये, उनके लिये रोएँ क्या? वे तो आनेवाले हैं नहीं। अब इनको लेकर हँसें तो क्या हँसें? सब जानेवाले हैं। क्या रोएँ और क्या हँसें? करो तो सेवा करो उत्साहपूर्वक, सबको सुख पहुँचाओ। ऊँचे–से–ऊँचा अच्छे–से–अच्छा बर्ताव करो। यह तो है काम करनेका। पर यह क्या धन्धा शुरू कर दिया—रोना–हँसना, राजी होना, नाराज होना। मुफ्तमें यूँ ही। राजी–नाराज न होकर प्रसन्न रहो। भगवान् जो विधान करे।

'जाहि विधि राखे राम ताही विधि रहिये।
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये'॥

भगवान्‌का नाम लो, प्रसन्न रहो। यह तो आता है और जाता है, रहता नहीं। बनता है, बिगड़ता है, यह तो ऐसा होता है। एक कहानी आयी है। वह कोई खास सिद्धान्तकी नहीं है, पर बात बहुत बढ़िया है।

चिन्ता मिटानेके विषयमें एक कहानी

एक राजकुँवर था, उसके साथ पाँच–सात–दस घुड़सवार घोड़ोंपर घूम रहे थे। बहुत–सी गुजरियाँ कोई छाछ, कोई दूध, कोई दही ऐसे लेकर बिक्री करनेको जाती थीं। तो याद आ गयी कि भगवान्‌ने ऐसे ही दही–दूध लूटा था तो अपने भी चलो। फिर उनको दाम दे देंगे, एक तमाशा कर लें। राजकुमार गये और लूट लिया, उनके मटके फोड़ दिये। बेचारी रोने

लगीं। एक उनमेंसे थी, जिसका छाछका मटका फोड़ दिया था, छाछ बिखर गयी। वह चिन्ता ही नहीं करती, वह वैसे ही प्रसन्न है। छाछका मटका लिये जाती थी, मटका फूट गया, छाछ बिखर गयी तो भी वैसे ही राजी है। तो राजकुँवरने कहा—'तू रोती नहीं क्या बात है? तेरे चिन्ता क्यों नहीं हो रही है?' तो कहा—महाराज! मेरी बात लम्बी है। मैं इस छाछका सोच क्या करूँ? ***'महाराज कुमार भई गुजरी ! अब छाछको सोच कहा करिये।'*** अब छाछका सोच क्या करूँ? क्या बात हुई? तो उसने अपनी कथा सुनायी। राजकुँवरने सब साथियोंसे कह दिया सुनो भाई! बात सुनो।

वह कहने लगी—अमुक-अमुक शहरके एक सेठकी मैं पत्नी थी और मेरे गोदमें एक बालक था। वे सेठ बाहर देशान्तरमें चले गये कमानेके लिये। वहाँके राजाकी बुद्धि खराब थी। मेरी अवस्था छोटी और रूप सुन्दर था। उसने मेरेपर खराब दृष्टि कर ली और कहा—'अमुक दिन तेरेको मिलना पड़ेगा, आना ही होगा, तुम कब आती हो जवाब दो?' तो मैंने कहा—'अभी ठहरो!' अपने पतिको याद किया, पत्र दिया कि जल्दी आओ मेरे आफत आ गयी, आप जल्दी आओ। वह सेठ बेचारा आ गया तो बीती बात कही और पूछा कि 'मैं क्या करूँ?' तो आपसमें सलाह की कि कोई बात नहीं। तुम उसको समय दे दो। और राजाको कह दिया कि अमुक जगह शहरके बाहर आप आ जाओ, 'पर शर्त यह रहे कि मीलभर नजदीकमें कोई अन्य व्यक्ति न रहे।' राजाने स्वीकार कर लिया। दोनों पति-पत्नी घरसे निकल गये, कारण कि यहाँ टिक नहीं सकेंगे। तो रात्रिमें वहाँ तलवार लेकर गयी। जब राजा आया तो उसका टुकड़ा कर दिया और भाग गयी।

राजासे कह रखा था कि रातभर कोई नहीं आना चाहिये, तो कोई नहीं आयेगा। भागनेके पहलेसे पतिको कह दिया था कि आप अमुक जगह टूटे-फूटे मकानमें रहो, जो वहाँ था। वहाँ रहा तो पतिको जहरीला साँप काट गया, जिससे वह मर गया। जब पतिके पास आयी तो उसे मरा पाया, फिर तो अकेली भागी कोई रक्षा करनेवाला नहीं था। पकड़ी गयी तो लोग टुकड़े-टुकड़े कर ही देंगे। बढ़िया गहने पहने हुए वहाँसे भागी।

आगे डाकू मिल गये। उन लोगोंने पकड़ लिया, सब गहने छीन लिये और वेश्याके घर ले जाकर बिक्री कर दिया। वेश्याने छोटी अवस्था देखकर खरीद ली। छोरा पीछे ही रह गया। अब वहाँ रहने लगी। अब उधर दूसरा राजा बैठा तो उसने मेरे छोरेको पालकर बड़ा किया। वह मेरा लड़का वहीं राज्यमें नौकरी करने लगा। बड़ा हो गया। इधर मैं वेश्या हो गयी। अब एक बार वह छोरा भी मेरे यहाँ आया। रातभर रहा मेरे वहम हो गया, कौन है यह? सुबह होते ही पूछा तो उसने नाम-ठाम बताया, तो पता लगा अरे! यह तो मेरा ही लड़का है। बड़ा दुःख हुआ, क्या तेरी दशा थी? बड़ी ग्लानि, बड़ा भारी दुःख हुआ। पण्डितोंसे पूछा—'ऐसा किसीसे पाप घट जाय, तो क्या करे? तो कहा—'चिता बनाकर आगमें बैठ जाय।' विचार किया कि प्रायश्चित्त करना है। क्या मैं थी और क्या दशा हो गयी? ऐसा विचार आया कि चितामें बैठ जाऊँगी तो पीछे कौन गङ्गाजीमें डालेगा? नदीके किनारे काठ मँगाकर इकट्ठा कर बैठ गयी और आग लगा दी। वह काठ खूब जलने लगा। इतनेमें पीछेसे आयी बाढ़ तो उसमें बह गयी। बहते-बहते काठपर बैठी तो नौका हो गयी और

आग बुझ गयी। अगाड़ी किसी गाँवके किनारे काठ ठहरा तो नीचे उतरी। उधर गाँवमें गूजर बसते थे। अब वहाँ उनकी चीज बिक्री करके काम चलाती हूँ। अब वह छाछ लेकर आयी। आज ढुल गयी। अब क्या चिन्ता करूँ?

नृप मार चली अपने पिव पे, पिव भुजंग डस्यो जो गयो मर है।
मग चोर मिले उन लूट लयी, पुनि बेच दयी गणिका घर है॥
सुत सेज रमी, चिता पे चढ़ी, जल खूब बह्यो सरिता तरि है।
महाराज कुमार अब भयी गुजरी, अब छाछको सोच कहा करि है?

अब छाछकी चिन्ता क्या करूँ? क्या-क्या घटना घटी है, मटकी फूट गयी, छाछ ढुल गयी क्या हो गया इसमें? इस वास्ते क्या चिन्ता करूँ? तो ऐसी भाई कितने जन्मोंमें क्या दशा हुई है? थोड़े-से नुकसानमें रोने लगा जाय। अब छाछको सोच कहा करिये? क्या इसकी चिन्ता करें। ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, यह तो बीतता रहता है।

हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजंगदष्टं
देशान्तरेऽपि विधिवशाद् गणिका च याता।
पुत्रं पतिं समधिगम्य चितां प्रविष्टा
शोचामि गोपगृहिणी कथमद्य तक्रम्॥

सुखी-दुःखी होनेमें कारण—मूर्खता

गोप-गृहिणी होकर छाछको सोच क्या करूँ? ऐसी कई अवस्थाएँ हुई हैं, कितने जन्म बीत गये हैं। उसमें यह मर गया, बेटा मर गया, पति मर गया, पत्नी मर गयी। कई बार मरा है, क्या हो गया तेरे? तू यहाँका है नहीं, ये तेरे हैं नहीं। तू बहता आया है, साथमें मिल गये हैं। नदीमें काठ बहते हैं, बहते-बहते पानीका फटकारा लगे तो काठ इकट्ठे हो जायँ। दूसरे फटकारेमें अलग-अलग हो जायँ तो अब तो मिलें ही

नहीं। अब क्या रोएँ, क्या करें? यह तो ऐसा आता है। हवा चलती है तो फूस कहीं-का-कहीं आकर इकट्ठा हो जाता है। दूसरे झोंकेमें अलग हो जाय, अब क्या नयी बात हो गयी? यह बात आने-जानेवाली है। अगर इस बातको मनुष्य याद रखे कि इनके लिये क्या चिन्ता करें, क्या फिकर करें? अपना काम है—सदा नित्य-निरन्तर रहनेवाला आनन्द है उसे प्राप्त करना। पर संसारमें तो क्या है? धन हो गया तो क्या, धन चला गया तो क्या? उसके लिये झूठ-कपट करें, बेईमानी करें, धोखेबाजी करें, विश्वासघात करें, महान् अन्याय करें। वह अन्याय तो पल्ले बँधेगा। धन यहीं रहेगा। धन साथमें रहेगा नहीं। साथमें रहना तो दूर रहा, उम्रभरमें जितना इकट्ठा किया है, खर्च कर सकोगे नहीं। छोड़कर मरोगे और पाप साथ ले जाओगे। यह जरा सोचो, होश आना चाहिये। कमाओ, रखो। कोई खावे अच्छी बात है। अपने तो बस—

खावो खरचो भल पण खाटो सुकृत हुवे तो हाथे।
दिया बिना न जातो दीठो सोनो रूपो साथे॥

इस वास्ते उपकार करो, हित करो, शरीरसे परिश्रम करो, सेवा कर दो। शास्त्रकी आज्ञा, धर्मकी मर्यादा, अपने कुलकी मर्यादामें रहते हुए सबकी सेवा कर दो। सुख पहुँचा दो। मौजसे रहो, आनन्दसे रहो, क्यों दुःख पाओ? क्यों दुःखी होओ? धन हो गया राजी हो जाते हो, क्या हो गया तुम्हारे? धन हो गया तो हो गया। धन चला गया तो चला गया। आदर हो गया, हो गया। निरादर हो गया, हो गया। यह तो होता रहता है '**आगमापायिनोऽनित्याः**' ये तो आने-जानेवाले हैं, अनित्य हैं। इसमें क्या सुखी होवें, क्या दुःखी होवें? '**न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्**'। (गीता ५। २०)। जो

प्रिय लगे उसके प्राप्तमें हर्षित न होवे, अप्रिय हो गया तो अच्छी बात। वह भी चला जायगा। न सुख स्थिर रहता है न दुःख। मनमें विचार करें पर हो जाय कुछ और ही, तो होना है भगवान्‌के अधीन। इस वास्ते होनेमें तो प्रसन्न रहें; क्योंकि यह हमारे हाथकी बात नहीं है।

करनेमें अच्छे-से-अच्छा, उत्तम-से-उत्तम काम करना है। नीचा काम नहीं करना है। करनेमें हरदम सावधान रहें और होनेमें प्रसन्न रहें। ये चीजें सत्संगसे मिलती हैं। अब इनको ले लो आप, तो निहाल हो जाओ। मस्त रहो संसारमें, सुख-दुःख तो आते रहेंगे भाई! नफा और नुकसान तो होते रहेंगे। इनको कोई मिटा नहीं सकता, अपने मस्त रह सकते हैं। हो जाय तो बड़े आनन्दकी बात, न हो तो आनन्दकी बात। अपने आनन्दमें फर्क क्यों पड़े? इन आने-जानेवाली चीजोंको लेकर हम सुखी-दुःखी क्यों होवें? मुफ्तमें ही। कोई उड़ता तीर जा रहा हो, उसके सामने जावें और कहें लग गयी। तो क्यों गया सामने? फिर कहें लग गयी। यह प्रारब्धका दुःख नहीं है। प्रारब्धका है घटना घट जाना, परिस्थिति बन जाना। यह तो है—प्रारब्धका फल और दुःखी हो जाना यह है—मूर्खताका फल।

सुख-दुःख प्रारब्धका फल नहीं है। सुखी-दुःखी होते हैं भीतर। यह प्रारब्धका फल नहीं है। सुखदायी परिस्थिति आ जाय, दुःखदायी परिस्थिति आ जाय—यह प्रारब्धका फल है। वह निकल जायगी। फल भोगनेके बाद टिकेगी नहीं। सुखी-दुःखी होकर मुफ्तमें ही क्यों दुःख पावें? होनेपर क्या होता है? प्रारब्ध-अनुसार परिस्थिति तो आती है। क्या बूढ़ा नहीं होगा? क्या ज्ञान होनेपर बीमार नहीं होगा? वह गृहस्थ होता है तो उसके बाल-बच्चे नहीं मरेंगे क्या? ज्ञान होनेपर धन

आयेगा तो जायगा नहीं क्या? यह तो ऐसे ही होगा। ज्ञान होनेपर वह हर हालतमें मस्त रहेगा। ***'पूरे हैं मर्द वे ही, जो हर हालमें खुश हैं।'*** क्यों दुःख पावें मुफ्तमें? परिस्थिति तो प्रारब्धजन्य है, आ गयी, आ गयी। निकल जायगी, हम बीचमें ही क्यों दुःख खड़ा कर लें? वह हमारे अधीन है। हम क्यों दुःख पावें? हम तो मौजमें रहेंगे। धन रहे तो बड़ी अच्छी बात, उपकार करेंगे। नहीं तो मौजकी बात, अपने कुछ करना ही नहीं पड़ेगा। ज्यादा धन हो तो ज्यादा जिम्मेवारी, ज्यादा विद्या हो तो ज्यादा जिम्मेवारी, ऊँचा वर्ण, ऊँचा आश्रम हो तो ज्यादा जिम्मेवारी और आश्रम, वर्ण नीचा हो तो जिम्मेवारी कम। मौज हो गयी। हर्ज क्या हुआ? सीधी-सादी बात है।

करनेमें सावधान होनेमें प्रसन्न

छाछ ढुल गयी, बड़ा गजब हो गया। क्या हो गया? अपने घरका इसमें क्या गया? मैं किस घरकी थी, क्या थी क्या-से-क्या हो गयी? अब छाछ ढुल गयी तो ढुल गयी। यह तो होता है ऐसा। अब इसपर कौन विचार करे? इस वास्ते वह परमात्मा रहता है, यह सब-का-सब ज्ञानके अन्तर्गत है कि नहीं। सुख होता है, दुःख होता है, दोनों जाननेमें आते हैं। जाननेमें क्या फर्क पड़ा? थोड़ा-सा ध्यान दें। समाचार मिला कि अमुक जगह बेटा मर गया, अमुक जगह पोता पैदा हो गया। बातें दोनों बड़ी विरुद्ध हैं, बेटेका मरना और पोतेका जन्म होना। कितनी विरुद्ध? एक दुःखकी बात और दूसरी आनन्दकी बात। पर दोनोंका जो ज्ञान हुआ। 'जानना' उसमें क्या फर्क पड़ा? दोनों बातें जान लीं, ज्ञान हो गया। ज्ञानमें कोई फर्क नहीं। तो ज्ञान तो है ज्यों-का-त्यों रहता है। सुख हुआ और दुःख हुआ तो उसमें राजी और नाराज

होना हमारा काम नहीं है। हमें तो भगवान्‌की लीला देखकर प्रसन्न रहना है, मस्त रहना है।

रामायणमें बालकाण्ड आता है, अयोध्याकी बात भी आती है। जनकपुरीकी बात भी आती है और लंकापुरी व वनवासकी बात भी आती है। एक ही रामायणमें है। क्या रामायण अलग है? एक तो जनकपुरीमें पधारते हैं, एक लंकामें पधारते हैं। है कि नहीं फर्क? पर रामायण तो एक ही है न। ऐसे ही एक ही कथा है, उसमें आता है। कभी जनकपुरी आ गयी, कभी लंकापुरी आ गयी यह आता है। रामजीने भी करके बता दिया कि 'बेटा! तुम चिन्ता मत करो।' माता सीताने बता दिया 'बेटी! तुम चिन्ता मत करो।' कैसे महाराज जनकके यहाँपर पली। प्यारी पुत्रीपर उनका कितना स्नेह? लक्ष्मीनिधि उनके बड़े भाई थे, उनका कितना स्नेह था। माँ-बापका भी बहुत स्नेह था। सिद्धि महारानी थी भौजाई, उसका बड़ा ही स्नेह था। परिवारके सभी लोगोंका स्नेह था। जनकपुरी नगरीके लोग तो—महाराज! 'हमारी राजकुँवरी है। हमारे महाराजकी प्यारी पुत्री है!' सबका बड़ा आदर था और वहाँसे अयोध्या चले गये। शुक (तोता) मैना भी रोते हैं—कहाँ है जानकी? लोगोंके हृदयमें चोट लगे, आँसू आ जाय पक्षियोंकी बात सुन करके! इतना स्नेह! वहाँ अयोध्या गयी तो किस ढंगसे पाला कौशल्याजीने? किस रीतिसे प्यार किया? ***दीप बाति नहिं टारन कहऊँ, सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥*** (मानस २। ५९) कड़ी जगह सीताजीने पैर नहीं रखा। जहाँ सीताजीके घूमनेका स्थल था, वहाँ मखमलके गद्दे बिछाये रहते थे। वहाँ घूमती थीं सीताजी।

आज जंगलमें जा रही है। गर्म लू चले जोरदार, कभी

ठण्डी चले, कभी वर्षा हो जाय, खानेका ठिकाना नहीं, रहनेका ठिकाना नहीं। ऐसी अवस्थामें सब कहते हैं तुम यहीं घरपर रह जाओ। सासने, ससुरने, पतिने, सबने कहा—मन्त्रियोंने कहा—वनवास साथमें मन्त्री गया। उसने कहा—'बेटी! तुम पीछे चलो।' राम! महाराज दशरथने कहा है कि 'आप वापस पधारो, आप नहीं तो कम-से-कम इस जनकराजदुलारीको तो पीछे ले ही आओ। इसका सुकोमल शरीर है, कैसे वनवासका कष्ट सहेगी? इसको ले आओ।' दशरथजीने कहा कि 'मैं जनकराज-पुत्रीको भी देखता रहूँगा तो मेरे प्राण बच जायँगे। हमारे रामललाका शरीर है यह। उसका ही आधा अंग है। मेरे प्राण बच सकते हैं।' कितना महाराज, श्वशुरका उपकार-सेवा हो सकती है। वनवास आपको तो है नहीं। परंतु नहीं, मैं तो महाराजकी सेवामें रहूँगी। कष्ट सह लूँगी, पर महाराजकी सेवामें रहूँगी। बताओ! अपने कर्तव्यका पालन करना ठीक तरहसे दुःखी-सुखी क्या होना? क्या राजी-नाराज होना है? होनी रामजीमें भी हो गयी तो हमारे हो जाय, इसमें क्या बड़ी बात हो गयी? बड़े-बड़े अवतारोंमें, महापुरुषोंमें, जीवन्मुक्त सन्तोंमें सुख भी आया और दुःख भी आया। न सुख ठहरे, न दुःख ठहरे। यह संयोग-वियोग होता रहता है, अब इसमें क्या सुखी-दुःखी होवे?

'**समत्वं योग उच्यते**' गीता इसको योग कहती है। ऐसे संयोग-वियोगमें अपने तो एक ही बात है—एक रस रहे। सूर्य उदय होता है तो भी लाल। अस्त होता है तो भी लाल। यह नहीं कि उदय होनेमें खुशी ज्यादा आ जाय और दूसरा रंग हो जाय, अस्त होनेमें और दूसरा रंग हो जाय। वह तो एक ही है। ऐसे कितनी ही उन्नति हो जाय, कितना ही आदर

हो जाय, चाहे कितना ही निरादर हो जाय। यह तो आता-जाता है। '**आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व।**', '**यं हि न व्यथयन्त्येते**' जिनको व्यथा नहीं पहुँचाते हैं। न सुख आकर हलचल करता है और न दुःख आकर हलचल करता है। हृदयमें जो हलचल है—यह व्यथा है व्यथा, यह पीड़ा है पीड़ा, यह आफत है आफत। सुख लेकर खुशी होते हैं—'यह भी आफत है और महाराज, विपरीत अवस्था लेकर दुःखी होते हैं, यह भी आफत है। इस वास्ते पाप मत करो, अन्याय मत करो, न्यायपूर्वक सब काम करो। अब सुख आ जाय, दुःख आ जाय।' अन्याय करनेपर सुखी हो ही जाओगे, यह बिलकुल गलत बात है।

धनके लिये अन्याय मत करो

'पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥' (मानस २।२५१।५) लज्जा-निवारण करनेके लिये तो कपड़ा नहीं, पेट भरनेके लिये अन्न नहीं और पाप रात-दिन करते हैं। पाप करना-न-करना यह हाथकी बात है, पर सामग्री मिलना-न-मिलना हाथकी बात नहीं है। पाप नहीं करेंगे। अन्याय नहीं करेंगे। न्याययुक्त धर्मका आचरण करेंगे—इसमें मनुष्य स्वतन्त्र है। ऐसा कभी मत समझो कि हमारे पाप लिखा है, इस वास्ते पाप करते हैं। बड़ी भारी गलती है। अगर यह लिखा है, वैसा ही होता है तो हमें जो शिक्षा दी जाती है कि ऐसा करो और ऐसा मत करो—इसका क्या अर्थ होगा? क्योंकि जिसके प्रारब्धमें लिखा है पाप करना, वह तो पाप करेगा ही और जिसके प्रारब्धमें पुण्य लिखा है, वह पुण्य करेगा ही। तो पाप मत करो और पुण्य किया करो, इसका क्या मतलब हुआ? शास्त्र निरर्थक, शिक्षा निरर्थक, विधि-निषेध निरर्थक। इस

वास्ते अपने करनेमें सब स्वतन्त्र हैं। होनेमें परतन्त्र हैं। अब क्या होगा, कब होगा, कैसा होगा? इसका पता नहीं; परंतु जो करते हैं, इसमें पाप, अन्याय, झूठ, कपट, बेईमानी नहीं करेंगे। ईमानदारीको सुरक्षित रखो। आपकी रक्षा करेगी ईमानदारी।

नरकोंमें क्यों जाते हो भाई? मुफ्तमें ही। झूठ-कपटसे थोड़ा धन बचा लिया तो क्या कर लोगे? धन तो यहीं पड़ा रहेगा, मर जाओगे। फूँक निकल जायगी। पर असत्य बोला हुआ आपके साथ जायगा। धन एक कौड़ी जायगी नहीं। केश-जितना भी पाप पीछे रहेगा नहीं। तो मनुष्यको अपना भला-बुरा सोचना चाहिये, मैं क्या कर रहा हूँ? यह मनुष्य-शरीर नरकोंमें जानेके लिये मिला है क्या? इसमें आप स्वतन्त्र हैं, इसमें आप पराधीन नहीं हैं। पर इसका होश नहीं है, मनुष्यको तो पता नहीं है। यह बिना पता लगे आदमी गलती करता है। एक सज्जन मिले थे, उनकी बात मैंने सुनी थी। बूढ़े हो गये थे, वे रोने लगे। बात क्या हुई? उन्होंने कहा—मैंने माँकी सेवा जैसी की जाय, वैसी नहीं की। पीछे मेरेको पता लगा कि माँके समान संसारमें उपकार करनेवाला कोई नहीं है। '**मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्**' इस शरीरको पुष्ट करनेवाला माँके समान दूसरा कोई नहीं है। जन्म दिया है, पालन किया है। खाना-पीना-चलना भी सिखाया है जिसने। ऐसी माँकी सेवा करनी चाहिये। परंतु पहले पता नहीं था, पीछे पता लगा, माँका शरीर शान्त हो गया। मैंने माँकी सेवा नहीं की। तो जब पता लगेगा न, तब आपके पश्चात्ताप होगा। तो पहलेसे बताते हैं कि माता-पिता, बड़े पूज्य, आचार्य हैं, उनकी सेवा करो, उनको सुख पहुँचाओ। बूढ़े हैं, बड़े हैं, चले जायँगे फिर क्या करोगे। सास हैं, ससुर हैं, ये आपके घरोंमें तीर्थ हैं। साक्षात्—इन तीर्थोंका सेवन करो।

सती सुकलाकी कथा

एक कृकल नामके वैश्य थे, पद्मपुराणमें कथा आती है। उसके सुन्दर स्त्री थी, कृकल वैश्य भी धर्मात्मा पुरुष था। कृकलकी पत्नी सुकला भी बड़ी सुन्दर, सदाचारिणी, पतिव्रता स्त्रियोंमें शिरोमणि थी। गाँवके लोग तीर्थयात्रामें जा रहे थे तो यह मनमें विचार करने लगा कि हम भी तीर्थयात्रामें जायँगे। अपनी सती-साध्वी स्त्री सुकला थी, उसके सामने विचार किया तो उसने कहा—'आप तीर्थोंमें जाओ तो मैं भी साथमें चलूँगी।' वह सुन्दर तो थी ही, शरीर भी बड़ा सुकुमार था और तीर्थयात्रा आजकलकी तरह नहीं थी, जो सैर-सपाटा हो गया है। पैदल जाना पड़ता, वर्षोंतक घूमना पड़ता था। ज्यादा कपड़ा नहीं रखना, ज्यादा सामान नहीं रखना। तीर्थोंके कष्टोंको सहना है। भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी सहना है। लोगोंमें कहावत है—'कैसे थक गया, तीर्थोंका भक्त होवे ज्यों।' तीर्थोंमें जाता है तो थक जाता है। ऐसी दशा थी तो कृकलने देखा, यह निभ नहीं सकेगी। अभी तो कहती है साथ चलूँगी, पर मार्गमें बड़ा कष्ट है। यह सह सकेगी नहीं। इसका शरीर बहुत कोमल है, बहुत अमीर है। इस वास्ते उसे सोती हुई छोड़कर रात्रिमें अकेले ही चल दिये। सुबह इधर-उधर पता लगा कि वे तो तीर्थयात्रामें गये। बड़ी दुःखी हुई, क्या करे, नहीं ले गये। वहीं रहने लगी।

सुकला बहुत ही सुन्दर थी। देवराज इन्द्रका उसपर मन चला, जिनके अनेक अप्सराएँ हैं। उसने रतिको अपनी दूती बनाकर भेजा जो कामदेवकी अत्यन्त सुन्दरी स्त्री है। वह उसके पास आकर बातें करने लगी। मित्रता कर ली, मित्रतामें ही इन्द्रकी कुवासनाकी बात छेड़ी तो वह तेज हो गयी। एक बार बगीचेमें घूमते हुए बता दिया कि इन्द्र सामने आया है

और तेरेको चाहता है, तो जोरसे बोली—'भस्म कर दूँगी! एक जबान कहूँ जिसमें खतम हो जाओगे!' डर गया वह भी। वे सब चले गये। वह अपना ठीक धर्मका पालन करती हुई रही।

विधि आती है कि तीर्थोंमें श्राद्ध जरूर करना चाहिये, तिथि आवे, चाहे न आवे। अच्छा ब्राह्मण मिल जाय और अच्छा तीर्थ मिल जाय, वहाँ पिण्डदान करो और ठण्डी नदी '**नदीषु बहुतोयासु।**' नदी जिसमें बहुत जल भरा हुआ हो और '**शीतलाषु विशेषतः**' उसमें पूर्वजोंको पानी जरूर देना चाहिये। वहाँ जल दान करना चाहिये। तो कृकल तीर्थोंमें बडेरोंको खूब अच्छी तरहसे पिण्ड-पानी दिया, श्राद्ध किया। दान-पुण्य करके ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया। वह जब लौटकर आने लगा तो सामने बहुत बड़े शरीरवाला एक पुरुष मिला। वह एक-एक हाथमें तीन-तीन, चार-चार आदमियोंको पकड़े हुए था। वे चीं-चीं कर रहे थे। उससे कृकलने पूछा—'तुम कौन हो ?' मोटे पुरुषने कहा—'मैं साक्षात् धर्म हूँ।' कृकलने पूछा—'ये तुम्हारे हाथमें कौन हैं?' उसने कहा—'ये तेरे माँ-बाप और दादा-दादी हैं। बिना पत्नीके तुमने पिण्ड, पानी, श्राद्ध किया और ले लिया इन्होंने। इस वास्ते ये अपराधी हैं। इस वास्ते इनको दण्ड दूँगा।' कृकल बड़ा घबराया। घरपर आनेपर उसकी स्त्री सुकलाने बड़ा उत्सव मनाया। आज हमारे तो सूर्योदय हुआ है। जो रात थी, वह बीत गयी, खुशी मनायी।

कृकलने कहा—'अपने श्राद्ध-तर्पण करो, पहले बडेरोंको राजी करो, बडेरे किस तरहसे सुखी हो जायँ? तो पत्नीके सहित विधि-विधानसे ब्राह्मणोंको पूछकर अच्छी तरहसे श्राद्ध-तर्पण किया। श्राद्ध-तर्पणमें देवता प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—'तू पहले अकेला तीर्थयात्रामें गया। वहाँ तूने उनको पिण्ड दिया। इस वास्ते दोष लगा। अब तेरे पितरोंको शान्ति मिलेगी;

क्योंकि तेरी स्त्री पतिव्रता है। वह बेचारी पीछे रोती रह गयी। उसे साथ नहीं ले गया। तूने बड़ा अपराध किया।' वहाँ वर्णन आया है—'**पत्नीतीर्थ**'—जो पतिव्रता स्त्री होती है, वह तीर्थ होती है। माता-पिता तीर्थ, भाई तीर्थ, भौजाई तीर्थ और पतिव्रता स्त्री भी तीर्थ होती है। विदेशोंमें जैसे ठेकेदारी होती है, कांट्रैक्ट होते हैं, ऐसे हमारे यहाँ विवाह नहीं है। यहाँ विवाह पुण्यकारी काम है। बड़ा निर्मल काम है। स्त्रीके लिये कहा गया है कि पतिको ईश्वर समझे। पतिके लिये ऐसा नहीं कहा है कि पत्नीका तिरस्कार करो, अपमान करो। बड़ा भारी पाप लगता है। जो अपनी स्त्रीका अपमान करता है, तिरस्कार करता है, त्याग करता है, दुःख देता है, हाथ उठाता है तो वह बड़ा खराब काम करता है। बड़ा पाप करता है। यह आपका आधा शरीर है, अर्धाङ्गिनी है। उससे सलाह पूछो, दोनोंकी सलाहसे काम करो। ऐसा विवाहके समय वचन देते हैं एक-एकको। इस तरहसे करो। पर तूने ऐसा नहीं किया। पत्नीकी कृपासे ही तुझे माफ हुआ है, नहीं तो माफ नहीं होता। ऐसे उसने श्राद्ध-तर्पण आदि किया, देवताओंको, बडेरोंको राजी किया।

संसारमें रहनेका तरीका

पत्नी भी तीर्थ है सज्जनो! तीर्थ है तीर्थ। घरमें माता-पिता हैं, बड़े-बूढ़े हैं, वे तीर्थ हैं। उनका निरादर करते हो, तिरस्कार करते हो। उनका बड़ा भारी अपमान करते हो। तो ऐसा तिरस्कार करनेवालेका भगवान् भी विश्वास नहीं करते। जो माँ-बापका तिरस्कार करता है, जो स्त्री पतिका तिरस्कार करती है, जो पुरुष पत्नीका तिरस्कार करता है, जो कुटुम्बका तिरस्कार करता है; अपमान करता है, दुःख देता है तो भगवान् उसकी भक्तिका विश्वास नहीं करते। सज्जनो! भगवान्‌की भक्ति

भी करो और यहाँ जो बड़े हैं, पूजनीय हैं, आदरणीय हैं उनका आदर-सत्कार करो। अच्छा बर्ताव करो। फिर कब करोगे? बताओ। यह मनुष्य-शरीर हाथसे निकल जायगा तब क्या करोगे? प्राणोंके रहते-रहते अच्छा आचरण करके सबकी सेवा करो। दुनियामें भलाई होगी महाराज! परलोकमें कल्याण होगा। भगवान् राजी हो जायँगे। सन्त, शास्त्र, महात्मा खुश हो जायँगे, प्रसन्न हो जायँगे। जैसे, बालककी उन्नति देखकर माँ-बाप खुश होते हैं, ऐसे ऋषि, मुनि, महापुरुष भी आपका सदाचार, सद्‌गुण देखकर खुशी हो जायँगे। प्रसन्न होंगे, राजी हो जायँगे। ये बड़े अच्छे लड़के-लड़की हैं, जो धर्मका पालन करते हैं। ऋषि-मुनियोंकी, भगवान्‌की बड़ी भारी सेवा हो जायगी।

'आग्या सम न सुसाहिब सेवा' उनकी आज्ञा पालन करना बड़ी भारी सेवा है। इस वास्ते **'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।'** (गीता १८। ४५) अपने-अपने कर्तव्य करते हुए मनुष्य संसिद्धिको प्राप्त हो जाता है। इस वास्ते बड़े उत्साहके साथ, बड़ी लगनके साथ सेवा करो। और पहले कोई गलती हो गयी है उसके लिये उनके चरणोंमें गिरकर माफी माँग लो। बड़े पुरुष माफी देनेको तैयार हैं। माँ-बाप माफी दे देते हैं। पैरों पड़ जाओ तो माँ माफ कर देती है। माँको तो माफ करनेकी मनमें ही आती है। वह अपराध मानती ही नहीं। गोदीमें टट्टी फिर दे, पेशाब कर दे, उसको भी साफ कर देती है।

एक पण्डितजी महाराज कहते थे—विवाह करानेके लिये गये। तो वहाँ बहनें बड़ा सुन्दर-सुन्दर शृंगार करके आयीं। तो एक बहनकी गोदीमें छोटा बालक था। वह बढ़िया रेशमी जरीदार साड़ी पहने हुए थी। तो बच्चा टट्टी फिर गया तो पासमें बैठी स्त्री बोली—

'छोरा टट्टी फिर गया है।' तो वह छोरेकी माँ बोल पड़ी—'चुप रह जा, हल्ला करेगी तो छोरेकी टट्टी रुक जायगी, बीमार हो जायगा।' पण्डितजी मदनमोहनजीकी कही हुई बातसे, जो काशीमें अच्छे विद्वान् थे। बड़े त्यागी थे, उन्होंने यह बात सुनायी। तो देखा कि माँ कितना सहती है। दूसरी स्त्री चेता रही है कि ऐसी बढ़िया साड़ी खराब हो रही है। तो कहती है, हल्ला मत कर छोरेकी टट्टी न रुक जाय कहीं। अपने कपड़े खराब हो भले ही। इसके समान कौन है संसारमें सेवा करनेवाला?

ये भाई-बहन बड़े-बड़े चतुर बने हैं। हम भी बातें बनाते हैं तो हम सबकी दशा क्या थी? वही दशा थी। इस माँने पालन किया। माँकी कृपासे आप और हम बैठे-बैठे राजी हो रहे हैं। दशा क्या थी? टट्टी-पेशाब कर दिया और उसीमें लकीरें निकालते थे बैठे-बैठे। माँ कहती क्या कर रहा है? तो समझते ही नहीं थे। पता ही नहीं था। टट्टी-पेशाबका ज्ञान ही नहीं था कि यह अशुद्ध है, अपवित्र है कि क्या है? ऐसा ज्ञान था क्या? वही मैलेसे भरा हाथ यूँ सामने कर दिया। माँ कहती—'अरे क्या करता है?' माँ कहती तो समझते कि क्या हो गया? होश नहीं था। यही दशा थी कि नहीं। वह खिलाती तो मुँहसे गिरा देते थे। चाहे जहाँ लोट लेते, चाहे जहाँ टट्टी कर देते, चाहे जहाँ पेशाब कर देते थे। ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञान भी माँने दिया और नीचे-से-नीचा काम टट्टी-पेशाब भी माँने उठाया। धोबीका काम किया, दर्जीका काम किया, मेहतरका काम किया, गुरुका काम किया। कौन-सा ऐसा बड़े-से-बड़ा काम, छोटे-से-छोटा काम, जो माँने न किया हो। उस माँका तिरस्कार करते हो, अपमान करते हो। बड़े भारी पापकी बात है। इस वास्ते भाई! माँकी सेवा करो, घरमें ही तीर्थ है।

जिसको संसारमें रहना आता है, वह मुक्ति कर लेगा। संसारमें

रहना नहीं आता है तो बड़े त्यागी, महात्माजी बन जाओ तो भी कल्याण थोड़े ही हो जायगा। क्योंकि संसारमें ही रहना नहीं आता तो मुक्ति कैसे हो जायगी? जो तुम्हारे सामने परिस्थिति भेजी है, उसका भी उपयोग तुम ठीक नहीं कर सकते, तो इससे कल्याण कैसे हो जायगा? जो भगवान्‌ने अवसर दिया है, मौका दिया है, उसका अच्छी तरहसे उपयोग करो। ये बातें सत्संगके द्वारा सीखनी हैं और कोरी याद ही नहीं करनी हैं, काममें लाना है। आचरण अपना शुद्ध, निर्मल बनाना है। व्यवहार अपना सबके साथ अच्छे-से-अच्छा, ऊँचे-से-ऊँचा करना है फिर देखो। खुदको शान्ति मिलेगी, आनन्द मिलेगा, प्रसन्नता होगी। पहले माँ-बापका खुद तो आदर नहीं करता, फिर चाहे कि छोरा-छोरी हमारा आदर करे। तो क्यों भाई? तुमने रीति क्या निकाली है? अब पीछे दुःख पाते हैं। 'छोरे कहना नहीं मानते', तो 'तैने कैसा कहना माना है?' 'म्हारे बीनणी कह्योको मानेनी।' तो थे कितोक मान्यो कह्यो। आप तो 'करत कुसंग चाहत कुसल।' आप अच्छा करो, वह करे न करे। कोई हर्ज नहीं। आप अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो, वो न करे तो समझावो प्यारसे। बुरा मानो मत। बर्ताव अपना अच्छे-से-अच्छा करो। लड़का-लड़की नहीं मानें, बहुएँ नहीं मानें तो कोई हर्ज नहीं। बड़ी अच्छी बात। लड़का-लड़की-बहुएँ कहना मानें, उसमें तो है खतरा। मोह हो जायगा, फँस जाओगे। वे कहना नहीं मानें, उसमें आपके बड़ा लाभ है। उसके बड़ा नुकसान है।

तेरे भावे जो करे भलो बुरो संसार।
नारायण तूँ बैठके अपनो भवन बुहार॥

नारायण! नारायण! नारायण!

प्रवचन—४

मनुष्यको ऐसा स्वभाव बनाना चाहिये, जिससे अपना कल्याण हो। जीवमात्रकी इच्छा होती है कि हमारी बात रहे, लोग हमारी बात मानें—ऐसी एक आदत रहती है, उसीसे ही जन्म-मरण होता है। हमारे कुछ स्वभाव ऐसे हैं कि हम सुनावें तो दूसरा कहे जैसा सुनावें और जो कहे, वो काम करें। अपनी बात नहीं रखना ऐसा स्वभाव कुछ बनाया है। इस वास्ते कोई पूछ ले तो ठीक लगता है। हमारे सहारा लगता है कि ठीक है भाई! यों ही कहेंगे।

असली स्वतन्त्रता

यह जो गीतामें कहा है न, कामनाके त्यागकी बात, तो कामना क्या है? इस विषयमें मैंने पढ़ा भी, सोचा भी और प्रश्नोत्तर भी किये हैं। इस बातको समझनेके लिये प्रयत्न किया है। तो एक जगह हमें बहुत विलक्षण बात मिली। कामना नाम किसका है? 'मेरे मनकी बात हो जाय' बस, यही कामना है। मेरे कहनेके अनुसार चले, मेरे मनकी बात हो जाय। भगवान् कर दें तो वे ठीक, सन्त-महात्मा कर दें तो वे ठीक, लोग कर दें तो वे ठीक। हमारे मनकी बात करें—यही कामना है। इसका त्याग कर दें तो आदमीको शान्ति मिलती है, मुक्ति मिलती है, कल्याण होता है, बड़ा लाभ होता है। मनुष्य समझता है कि मेरा हुकुम चले तो मैं स्वतन्त्र हुआ और मैं दूसरोंकी बात करता हूँ, सुनता हूँ तो परतन्त्र हुआ। यह बिलकुल गलत बात है। स्वतन्त्रता-परतन्त्रता क्या है?

परतन्त्रतामें स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रतामें परतन्त्रता, परतन्त्रतामें परतन्त्रता, स्वतन्त्रतामें स्वतन्त्रता—ऐसे चार भेद करके विवेचन करनेका काम पड़ा है। मनुष्य मानता है कि मैं स्वाधीन हूँ, चाहे

सो करूँ, चाहे सो करवा लूँ, तो मैं स्वतन्त्र हो गया। यह स्वतन्त्रता नहीं है, महान् परतन्त्रता है। मामूली परतन्त्रता नहीं है; परंतु यह बात अकलमें नहीं आती। उलटी बात समझमें आती है। जैसे— कल्पना करो, हमारे मनमें घड़ी लेनेकी हो और घड़ीपर मन चले कि घड़ी अपनेको मिल जाय; परंतु रुपये पासमें नहीं हैं। इस वास्ते अनुभव होता है कि रुपये होते हैं तो हम स्वतन्त्र हैं और रुपये नहीं होते हैं तो हम परतन्त्र हैं। किसी चीजको लेनेकी मनमें होती है तो नहीं ले सकते, तो हम पराधीन हुए। रुपये हों तो घड़ी ले ली चट, तो स्वाधीन हो गये। इतनेतक ही अकलमें बात आती है; परंतु यह समझमें नहीं आती कि रुपये 'स्व' हैं क्या? रुपये स्वयं हो क्या आप? 'पर' ही तो हैं रुपये भी। स्वयं आप रुपये हो क्या?

रुपयोंके जो अधीन हुआ, वह स्वाधीन कैसे हुआ? वह तो रुपयोंका गुलाम हुआ। किसीके कहनेसे करता है तो उसका गुलाम हुआ। आपके कमाये हुए रुपयोंके आप वशमें हो गये, अधीन हो गये—यह स्वाधीनता कैसी? यह महान् पराधीनता है, जडकी पराधीनता है। रुपये ज्यादा हो जायँ तो खर्च करना मुश्किल हो जाता है। थोड़े रुपये तो खर्च कर सकता है आदमी। ज्यादा रुपये खर्च करना बड़ा मुश्किल होगा। वह समझता है कि स्वाधीन हूँ, पर महान् पराधीन हो जाता है। परंतु भाई! यह बात समझमें नहीं आती है, क्या करें? रुपयोंके अधीन काम हुआ तो स्वतन्त्रता कैसी?

स्वतन्त्रता किसका नाम है? हमारे मनमें कोई बात नहीं, किसी बातकी इच्छा नहीं। किसी बातकी चाहना नहीं।

यह जो इच्छा होती है मनमें कि यह हो जाय, यह हो जाय— इसका नाम है कामना। गीताने इसके त्यागपर बड़ा जोर दिया है। '**इदं मे स्यादिदं मे स्यादितीच्छा कामशब्दिता:**' यही कामना

है। ऐसा हो जाय, ऐसा हो जाय। ‘***पूरे हैं मर्द वे ही जो हर हालमें खुश हैं। जो हो जाय, उसमें ही खुश हैं।***’ बहुत आनन्द है, वे स्वतन्त्र हैं। कैसी परिस्थिति आ जाय, कैसी अवस्था आ जाय, कैसी घटना घट जाय, जो कुछ हो जाय, उसमें मस्त रहे अपने। तब वे संसारसे ऊँचे उठ गये।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्‌ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(५। १९)

परमात्म-स्वरूपमें कौन स्थित होते हैं? जो यहाँ जीवित अवस्थामें ही संसारमात्रपर विजयी हो जाते हैं। उसपर कोई संसारका प्राणी विजयी नहीं हो सकता। सबपर विजयी कौन है? ‘**येषां साम्ये स्थितं मनः**’ जिनका मन साम्यावस्थामें स्थित हो गया है। साम्यावस्था क्या? जो हो जाय उसीमें ही मस्त रहे। जैसे हो जाय ठीक है। करनेमें भगवान्‌के अधीन रहे। करनेमें शास्त्रके, भगवान्‌के अधीन रहना। इसमें परतन्त्रता दीखती है, पर इस परतन्त्रतामें महान् स्वतन्त्रता भरी है। जो बड़ा होकर माँ-बापका और गुरुजनोंका कहना नहीं करता, मर्यादाका पालन नहीं करता, वह समझता है कि मैं स्वतन्त्र हूँ। वह वास्तवमें अपनी इन्द्रियोंका, अपने मनका गुलाम है। आज समझते हैं कि हम तो नयी रोशनीके आदमी हैं। स्वतन्त्र विचारोंके हैं। किसीका कहना नहीं करेंगे, मर्जी आये सोई करेंगे। हम तो कहते हैं कि तुम्हारी नयी रोशनी है तो मनुष्योंमें पहले गधापन, कुत्तापन नहीं था यह बिलकुल नयी रोशनी होगी, बन्दर भी करता है अपनी मर्जीसे और डरता है तो केवल डण्डेसे। कुत्ता भी मेहतरके घरमें जैसे चला जाय, वैसे ही बिना पैर धोये ब्राह्मणके घरमें चला जायगा, क्योंकि यह स्वतन्त्र है। यह स्वतन्त्रता कोई स्वतन्त्रता होती है? जहाँ चाहे टट्टी

फिर जाय, जहाँ चाहे पेशाब कर जाय; क्योंकि स्वतन्त्र हैं हम तो। ऐसी स्वतन्त्रता मनुष्योंमें नहीं थी। माता, पिता, धर्म आदिकी बात मानते थे। अब कहते हैं कि हम नयी रोशनीके हैं, बिलकुल नयी रोशनी। तुम नयी रोशनी कहते हो, पर यह बिलकुल अँधेरा है। मनुष्यमें ही अँधेरा हो गया। अँधेरा पशुओंमें, पक्षियोंमें तो था। अब मनुष्योंमें भी आ गया। रोशनी कैसी हुई है? परंतु इसको ही रोशनी कहते हैं।

अपनी स्वतन्त्रता कब होगी? जब अपने साथियोंको, अपने साथ रहनेवालोंको स्वतन्त्रता दी जाय। उनकी न्याययुक्त बात हो तो उसका आदर किया जाय। उनकी न्याययुक्त बात हो वह हमें माननी चाहिये। यह बात खयाल रखनेकी है। कुटुम्बियोंके साथ आप बर्ताव करें तो कुटुम्बमें रहनेवाले भाई-भौजाई, भतीजे, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, काका-बाबा आदि जितने हैं उनकी बात अगर न्याययुक्त है तो उस बातको प्रधानता देनी चाहिये। अपनी मनमानीको प्रधानता नहीं देनी चाहिये। इससे आदमी स्वतन्त्र होता है। बड़ा श्रेष्ठ आदमी हो जायगा। समाजमें भी ऊँचा स्थान पा जायगा। भगवान्‌के यहाँ भी ऊँचा स्थान पा जायगा। सन्तोंके, महात्माओंके, शास्त्रोंके, धर्मोंके अनुसार वह श्रेष्ठ पुरुष बन जायगा। जो अपनी मनमानी करता है, अपनी हेकड़ी रखता है और अच्छा-मन्दा सब तरहका काम कर बैठता है तो उसके घरवाले भी उससे राजी नहीं होते। बाहरवाले एवं समाजवाले भी राजी नहीं होते। उसकी परतन्त्रता छूटती नहीं। पशु-पक्षी आदि योनिमें नरकोंमें जाओगे तो वहाँ तो परतन्त्रता है ही; परंतु मनुष्य-योनिमें यह स्वभाव डाल दिया। अब यह जहाँ जायगा, वहाँ दुःख पायेगा, कष्ट उठायेगा।

स्वभाव सुधारनेका अवसर

यहाँ मनुष्य-शरीरमें आये हैं तो हमारेको खास बात क्या करनी

है? आस्तिक हो, चाहे नास्तिक हो। अपने स्वभावको शुद्ध और निर्मल बनाना है। ऐसा निर्मल बने कि हमारे स्वभावसे किसीको तकलीफ न हो। अपनी नीयत तकलीफ देनेकी न हो, किसीको कष्ट देनेकी न हो। हमारी क्रिया भी न हो, हमारा भाव भी न हो; फिर भी किसीको दु:ख हो जाता है तो उसका भी खयाल करना बड़ा अच्छा कि उसे दु:ख न हो; परंतु यह हाथकी बात नहीं।

आपके स्वभावमें दूसरेको दु:ख देनेकी बात नहीं है। पर आपको देखकर जल उठे। उसका क्या किया जाय? रात्रिमें बिजली चमकती है तो गधी दुलत्ती मारती है। क्या आफत आ गयी? अब वह बिजली क्या करे बेचारी। उसने गधीको कोई दु:ख दिया है क्या? पर वह गधी दु:ख यों ही पावे। अब उसका क्या किया जाय? इस तरहसे दूसरेको देखकर दु:ख होता है, वह अपने स्वभावके कारण दु:खी होता है। हम अपना जीवन संयत रखें और ठीक तरहसे चलें। देख-देखकर ही किसीको जलन पैदा हो जाय तो अब उसमें भगवान्‌से प्रार्थना करें—'हे नाथ ! हमारे द्वारा किसीको दु:ख न हो। हमारेको देखकर भी दु:ख न हो।' ऐसा अपना स्वभाव रखें कि हरेकको सुख हो जाय।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

सब-के-सब सुखी हो जायँ, कोई दु:खी न रहे, सब-के-सब नीरोग हो जायँ, किसीके रोग, आफत न रहे, सबके मङ्गल-ही-मङ्गल हो, शुभ-ही-शुभ काम हो। कोई भी, कभी, किसी अवस्थामें दु:ख न पावे। ऐसा अपना स्वभाव बना ले, ऐसा ध्येय बना ले, लक्ष्य बना ले। तब मनुष्य-जन्म सफल होगा। अपनी मनमानी त्याग करनेमें वही सफल होता है जो दूसरेके मनकी बात करता है। औरोंकी न्याययुक्त इच्छा पूरी

करनेसे अपनी इच्छाके त्यागनेका बल आ जाता है। अपने मनकी बात त्यागनेकी योग्यता आ जाती है। अपने मनमानी करते रहो तो अपने मनमानी करनेका ही बल बढ़ेगा। वह स्वभाव तो अगाड़ी नरकोंमें डालेगा भाई!

जितने संसारमें दुःखी हैं, जितने कैदमें पड़े हैं, जितने नरकोंमें जीव हैं, जितने रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, जहाँ कहीं दुःख पा रहे हैं तो कुछ-न-कुछ उनके भीतरकी चाहना है, इच्छा है कि यूँ नहीं होना चाहिये। ऐसी कामनावाले ही दुःख पाते हैं। भीतरसे जिनके ऐसी कामना नहीं है, उनको दुःख हो ही नहीं सकता। बुखार आ जाय, तकलीफ हो जाय, पर उनको दुःख नहीं होता। दुःख है मनका। अपने मनमानी नहीं होनेसे दुःख होता है। बुखारमें क्या होता है? बुखार आदि प्रतिकूल परिस्थितिसे दर्द होता है, दुःख नहीं।

दर्द और दुःख अलग-अलग चीज है। '***खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी***॥' (मानस ७। ३९। ३) जिसका हृदय दुष्ट (दोषी) होता है, उसके ताप विशेष होता है। उसके जलन ज्यादा होती है; क्योंकि दूसरेकी सम्पत्ति देखकर जल उठते हैं। उसके इतना धन क्यों हो गया? उसके बेटा-पोता इतना क्यों हो गया? उसका कहना क्यों मानते हैं लोग? परिवारवाले भी उसके अनुकूल क्यों चलते हैं? ऐसे करके जलने लग जाय। उसका दुःख कैसे मिटे? बताओ, यह प्रारब्धका दुःख नहीं है। यह दुष्टताका दुःख है। स्वभावसे दुःख होता है, परिस्थितिसे दुःख होता है, अपने सुख चाहते हैं और सुख न मिलनेसे दुःख होता है। परिस्थिति अनुकूल न होनेसे जो दुःख होता है, वह तो मूर्खताका है; परंतु दूसरेकी उन्नति देखकर दुःख होता है, यह दुष्टताके कारणसे होता है।

सुख पहुँचानेका भाव

हृदयमें आनन्द होना चाहिये, हृदयमें मस्ती होनी चाहिये कि अच्छी बात है इतने घर तो सुखी हुए। इतनी हमारी माताएँ-बहनें सुखी हैं, बड़ा आराम है। कितने आनन्दकी बात है। दूसरे भी सब सुखी हो जायँ—ऐसी भावना रखो दूसरे तो सुखी होंगे कि नहीं होंगे, पता नहीं; परंतु आप सुखी हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। आपका ऐसा भाव होनेसे आपका कल्याण हो जायगा। जो सबका हित चाहता है, उसका हित स्वतः होता है, स्वाभाविक हित होता है। मनुष्योंके हृदयमें उसके लिये स्थान हो जाता है। जो सबका हित चाहता है, कल्याण चाहता है, उद्धार चाहता है, सबकी वास्तविक उन्नति चाहता है। जो दूसरे आदमी हैं, वे बिना कहे-सुने उसका हित करते हैं। उनके हृदयमें उसके प्रति सद्भाव पैदा हो जाते हैं स्वाभाविक ही और जो दुष्ट है, दूसरोंको दुःख देना चाहता है तो उसके प्रति दूसरोंके भी दुर्भाव पैदा हो जाते हैं। यह मनुष्यको दिखता नहीं, इस वास्ते मानता नहीं; परंतु आप जैसे बीज बोओगे, वैसी खेती पैदा होगी। आप दूसरोंके दुःखके लिये भावना रखते हैं तो दूसरोंको तो दुःख होगा, उनके प्रारब्धका दुःख आ जाय तब आपकी चाहनासे दुःख नहीं होगा; परंतु आपके लिये तो दुःखका बीज बोया ही गया, इसमें संदेह नहीं है। अपनेको जो दुःख दे, उसके लिये भी सुखकी इच्छा करनी चाहिये।

'उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥'

(मानस ५। ४१। ७)

विभीषणने रावणको कहा—'हनुमान्‌जी दूत बनकर आये हैं इनको दुःख नहीं देना चाहिये। इनको आराम देना चाहिये। नीतिकी बात करनी चाहिये।' रावण मारने लगा तो विभीषणने कहा—तो यह बात उस समय तो मान ली। फिर जब काम

पड़ा, फौज आ गयी है, जाना है तो उस समय विभीषणसे कहता है—‘***मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।***’ रहता तो है मेरे शहरमें और प्रीति करता है तपस्वीके साथ। तो उसके साथ जाओ। ‘***सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥***’ (मानस ५। ४१। ५) उसे नीति सिखाना। एक बार हनुमान्‌जीके लिये तेरी नीति मानी तो घर जल गया, सारा गाँव जल गया। तेरी नीति उनको ही दे, जिससे उनका ही नाश हो जाय। हम नहीं मानेंगे तेरी बात। विभीषणको जोरसे लात मारी। ‘***अनुज गहे पद बारहिं बारा।***’ (मानस ५। ४१। ६) विभीषण रावणके चरण पकड़ते हैं और कहते हैं—‘आप बड़े भाई, पिताके समान हैं। बेशक आपने मुझे मारा—‘***तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥***’ (मानस ५। ४१।८) तुम्हारा हित तो भगवान्‌के भजनसे है। ऐसा कहता ही रहा। रावणने धमकी दी। लातका प्रहार किया। बात अच्छी कहनेपर भी लातका प्रहार मिला तो वास्तवमें क्या नतीजा निकला? विभीषणका कहना तो ठीक निकला ही। रावणने काम तो अहित होने लायक ही किया, परंतु भगवान्‌के हाथसे मरनेसे उसका उद्धार हो गया। विभीषणने अहित नहीं किया। उसके हृदयमें यह भाव है कि आपका हित भगवान्‌के भजन करनेसे है। सीताको आप दे दो तो बड़ा अच्छा है, राड़ नहीं होगी, लड़ाई नहीं होगी, आपका काम ठीक बैठ जायगा; परंतु जिनके विपरीत बुद्धि होती है न, उनके विपरीत बात जँचती है। ‘**विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।**’ ठीक बातको भी सही नहीं समझता; परन्तु संतोंका हृदय क्या होता है? यह बता दिया। ‘***मंद करत जो करइ भलाई।***’ मन्दा करनेपर भी वे भलाई ही करते हैं अपनी तरफसे। वे सबका भला चाहते हैं। उनका

भला स्वाभाविक होता है। वायुमण्डल बनता है। प्रकृतिमें शक्ति है, जिसका हृदय शुद्ध होगा और सबका भला चाहेगा तो प्रकृतिसे उसका भला होगा। यह प्रकृतिमें ताकत है, विलक्षणता है, स्वाभाविक ही हित होगा।

अपने द्वारा सबका हित हो, किसी तरह सबका कल्याण हो, दूसरोंको लाभ हो जाय, दूसरोंको सुख हो जाय, औरोंको आराम मिले—ऐसा भाव रहेगा तो सब-के-सब लोग सुखी हो जायँगे, ये हाथकी बात नहीं; क्योंकि परिस्थिति उनके कर्मोंके अनुसार आवेगी; परंतु आपने जो भावना की है, यह परिस्थिति नहीं है। यह आपका नया उद्योग है, नया कर्म है, नया भाव है। ऐसा आपका उद्देश्य है तो आपका कल्याण होगा। आपके लिये इसका भला-ही-भला नतीजा होगा; क्योंकि सम्पूर्णके हितमें आप रत हैं न। *'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥'* (गीता १२। ४) सबका हित कर देना, यह बात हाथकी नहीं है; परंतु बुरा किसीका भी नहीं चाहना चाहिये। सज्जनलोग कहते हैं भाई ! वैरीका भी अहित न हो। भगवान् राम लंकामें पहुँच गये, फिर विचार हुआ। सोचा तो कहा 'पहले अंगदको भेजना चाहिये। उनको खबर कर देनी चाहिये पीछे देखो क्या होता है?' अंगदको भेजा उस समय रामजीने कहा—'*काजु हमार तासु हित होई।*' काम तो हमारा बने और हित रावणका हो। *'रिपु सन करेहु बतकही सोई॥'* (मानस ६। १७। ८)जरा सोचो, कितनी विलक्षण बात है।

शुद्ध स्वभावकी आवश्यकता

हमारा काम बन जाय और उसका हित हो जाय। तो 'काम' बड़ा है कि 'हित' बड़ा है। कोई भाई हो, उसके प्लेगकी बीमारी लग जाय तो उस बीमारीसे बचते हुए उसकी सेवा करें। उसके साथ वैर नहीं। वह तो बीमार है बेचारा; परंतु बीमारीके साथ

स्नेह नहीं। बीमारीको तो मिटाना चाहते हैं। ऐसे मनुष्यमात्र परमात्माके अंश हैं। मनुष्योंमें जो खराब स्वभाव आ जाते हैं, ये आगन्तुक हैं। ऊपरसे आये हुए हैं, इस वास्ते इन दोषोंको मिटाना है। इन बीमारियोंको दूर करना है न कि बीमारको ही मार देना है। दोषी आदमीके दोषोंको दूर करना है अपने तो। कैसे दोष दूर हो? इसका चिन्तन करो, इसका विचार करो, युक्ति सोचो, किस तरहसे इसका दोष दूर हो? उसके दोषको देखना दोषदृष्टि नहीं है। वह तो निर्दोष देखना चाहते हैं कि उसमें दोष यह न रहे। अपना पुत्र है, अपना शिष्य है, अपना नौकर है, अपना प्यारा मित्र है, उसमें कोई अवगुण आ जाय तो अवगुण दूर हो। जैसे रोगीका रोग दूर हो— ऐसा विचार होता है। ऐसा नहीं कि रोगी मर जाय। ऐसे ही किस तरहसे उनका अवगुण दूर हो, तो यह अवगुण दूर कैसे होता है? आपके हृदयमें सद्भावना हो और आदरसहित उनके साथ बर्ताव किया जाय तो अवगुण दूर होता है। उनका निरादर करोगे तो उनके मनमें भी निरादर पैदा हो जायगा। उसका असर अच्छा नहीं पड़ेगा। प्यारसे, स्नेहसे उनका हित करते हुए, सेवा करते हुए ऐसी शिक्षा दो, जिससे उनका दोष दूर हो जाय। दुष्टता ज्यादा होती है, तब वे मानते नहीं। सेवा करो, नम्रता करो तो भी वे समझते हैं कि गरज करता है। यह कायर आदमी है, ऐसा ही है यह तो। ऐसे दोषदृष्टि करेंगे। पहलेसे दोषदृष्टि करते हैं, फिर और दोषदृष्टि कर लेंगे और क्या होगा? परंतु अपनेको अपना स्वभाव शुद्ध, निर्मल बनाना है।

दो सज्जन थे। एकने कहा—'आप मेरी परीक्षा कर लो, मेरेको क्रोध नहीं आता है। आप कुछ भी कर लो, मेरेको क्रोध नहीं आयेगा।' दूसरे सज्जनने कहा—'बड़ी अच्छी बात!

काम, क्रोध, लोभ तुम्हारेपर आक्रमण न करे, क्रोध नहीं आवे तो बड़ी अच्छी बात है, पर तुम्हारी परीक्षाके लिये मैं मेरा स्वभाव क्यों बिगाड़ूँ बताओ? तेरेको क्रोध नहीं आवे तो बड़ी अच्छी बात, बड़े आनन्दकी बात है, खुशीकी बात है। अपना स्वभाव क्यों बिगाड़े भाई? स्वभाव चलेगा साथमें। ये चीजें, वस्तुएँ, घटनाएँ साथ नहीं रहेंगी। घटना घटती है और मिट जाती है; परंतु जैसा स्वभाव बना लिया वह तो साथमें चलेगा। चोरी करनेका जो स्वभाव बना है, यह जहाँ जाओगे, वहीं तंग करेगा। दूसरोंको दु:ख देनेका स्वभाव है तो जहाँ जाओगे, वहाँ भी तंग करेगा।

जिसका स्वभाव शुद्ध हो गया। किसी कारण उसे नीच योनिमें जन्म भी लेना पड़ेगा तो वहाँ वह सुख पायेगा। अगर खाने-पीनेमें चटोरपना पैदा कर लिया कि यह चाहिये, यह ठीक नहीं है। चटनी बढ़िया नहीं हुई, नीबू नहीं दिया। दो पत्ती डाल देते पोदीनाकी तो रंग खिल जाता। बढ़िया नहीं बनी। अब पोदीना डाल दिया। थोड़ा-सा नीबू निचोड़ देते तो क्या एक सुन्दर चटनी हो जाती। ऐसे चटोरपनेका स्वभाव बिगाड़ लिया। अब वह पशु हो जायगा तो उसे बढ़िया चरने नहीं देते। मैंने गाँवोंमें देखा है। ऐसी उस गायको, बैलको बढ़िया चारा नहीं देते। कहते हैं—'आज बढ़िया चर लिया तो यह दो-तीन दिन चरेगा नहीं।' उसके डण्डा पड़ते हैं, बढ़िया चारा चरने नहीं देते; क्योंकि स्वभाव बिगाड़ा हुआ है मनुष्य-जन्मका। तो अच्छा चारा मिलता ही नहीं। कुछ ऐसा बैल होता है कि भूख लगे तो बढ़िया दे दो, चाहे घटिया दे दो, पेट भर लेता है तो वह बढ़िया चारा चर भी ले तो कोई बात नहीं, अब बाँध दो। चारा चर लिया तो चर लिया।

यह भूखा नहीं मरेगा। जिसके चटोरपना ज्यादा है तो मालिकको उसकी निगाह रखनी पड़ती है कि उसको बढ़िया चारा नहीं मिल जाय कहीं। स्वभाव बिगड़नेसे आड़ ही लगी। फायदा क्या हुआ?

शुद्ध स्वभाववालेका आदर

ऐसे स्वभाव खराब हैं तो महाराज सब घरवाले खराब मानते हैं। बहनों-माताओंमें जिनका स्वभाव खराब होता है, उनको पीहरमें बुलाते हैं तो भाई और भौजाई सब सतर्क हो जाते हैं। बाई सा आ गयी है। चीज-वस्तु सँभालकर रखो ठीक तरहसे, तालेमें रखो। यह देख लेगी, माँगेगी तो देंगे तो चीज खराब हो जायगी। नहीं देंगे तो मन खराब हो जायगा। तो यह देखे ही नहीं, बस! **'न देखे न कुत्तो भूसे'** इसे पता ही न लगे। बेचारे घरके आदमी ऐसे डरते हैं; क्योंकि स्वभाव बिगड़ा हुआ है। स्वभाव सुधरा हुआ है तो बाई आ गयी तो भाई कहता है कि बाई चाबी तू ही राख। घरमें सब काम तू ही देख। वे अपने निश्चिन्त हुए। बाई तो दोनों ही हैं फर्क नहीं है। एक माँ-बापके पैदा हुए बहन और भाई। पर एक होते हुए भी स्वभाव जिसका शुद्ध है, उसको सब चाहते हैं। विधवा हो जाय तो देवर-जेठ आदि चाहते रहते हैं और यहाँ भाईलोग चाहते हैं। देवर आदि लेनेके लिये आते हैं—'बहुत जरूरी है, बालक होनेवाला है, हम तो भौजाईको लेनेके लिये आ गये।' भाई कहते हैं—'नहीं सा, अब भेजेंगे नहीं।' क्यों? 'हमारे तो यह माँकी जगह है। जैसे माँसे सलाह लेते थे, ऐसे बाईसे सलाह लेते हैं—सब काम करनेमें। कैसे भेज दें? हमारे माँकी जगह है।' अब बताओ शुद्ध स्वभाव होनेसे भाइयोंके भीतर कितना आदर है? कितना भाव है? उधर ससुरालवाले भी चाहते हैं। वे भी चाहते रहते हैं। जिसका स्वभाव खराब होता है तो माँ कह देती है, 'बेटा!

इन बाईने अपने घर पहुँचा दे। बड़ो टाबर आपरे घर ही आछो।' कारण क्या? लखण बोदा तो कुण चावे? (स्वभाव खराब है तो कौन चाहे?)

हम और काम करनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं। धन कमानेमें स्वतन्त्र नहीं हैं। मेहनत करके धन कमा ही लें, यह हाथकी बात नहीं; परंतु स्वभाव सुधारनेमें आप स्वतन्त्र हो। आप अगर चाहें तो स्वभावको शुद्ध बना सकते हैं। स्वभाव बिगड़ा हुआ होता है तो सब दुनियाको दुःख होता है। कष्ट होता है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(मानस ७। ४१। १)

अपना स्वभाव शुद्ध होता है तो सबको सुख होता है। स्वभाव बिगड़ा हुआ होता है तो सबको दुःख होता है। देवकिशनजी भोजक थे, वे कहते थे कि मैं चूरूमें स्टेशन-मास्टर था तो वहाँ एक दिन 'मंगलदास डाकू' आ गया। वह पोइंटवानका मित्र था तो उससे मिलने आ गया। वह आकर भीतर बैठ गया कुर्सीपर। वे कह रहे थे कि मैं पासमें ही बैठा था। किसीने कह दिया 'यह मंगलदास है।' इतना कहते ही बैठे-बैठे मेरा कुर्ता भीग गया पसीनेसे। यहाँ कुछ चोरी कर लेगा, कुछ ले जायगा तो क्या दशा होगी मेरी? ऐसे विचार करते-करते पसीना आ गया बैठे-बैठे। मौन ही था वह, पर स्वभाव बिगड़ा होनेके कारण परिचय होते ही भयसे पसीना आ गया और कोई सन्त आ जाय, महात्मा आ जाय तो गाँवमें एक आनन्द खिल जाय। महाराज पधार गये तो गाँवमें आनन्द-उत्सव होने लगता है। मनुष्य वे ही हैं, फिर फरक क्या है? एकका स्वभाव सुधरा हुआ है एकका स्वभाव बिगड़ा हुआ है। बिगड़े हुए स्वभावसे लोगोंको दुःख होता है, भय होता है। दुःख देना पाप है। पहले स्वभाव आप बिगाड़ा, पाप किया,

फिर पाप करते जाते हैं। स्वाभाविक ही पाप होते चले जाते हैं। औरोंको कष्ट होता ही चला जाता है। स्वभाव अपना शुद्ध निर्मल बना ले तो कहीं रह जाओ, लोग कहते हैं कि यह तो ऐसा अच्छा है ***'आँखमें घाल्यां ही खटके कोनी।'*** इतना निर्मल है। कैसी विचित्र बात है।

स्वभाव शुद्ध बनानेमें हरेक भाई–बहिन स्वतन्त्र हैं। धन कमानेमें परतन्त्र हैं, उसमें तो रात–दिन लगे हैं। स्वभाव शुद्ध बनानेके लिये परवाह ही नहीं करते। स्वभावको शुद्ध बना लिया तो जहाँ जाओ, वहाँ आनन्द–ही–आनन्द रहेगा। मौज–ही–मौज रहेगी। खुशी ही रहेगी। जिनका स्वभाव शुद्ध हो गया है, निर्मल हो गया है, उनको देखनेसे दुनिया सब–की–सब प्रसन्न होती है। दुनियाको बड़ा आनन्द मिलता है। जिन लोगोंने अपने स्वभावमें भगवान्‌को बसा लिया, भगवान्‌का भजन करते हैं, मात्र प्राणियोंके हितकी इच्छा करते हैं, उनकी तन, मन, वचनसे जो कुछ चेष्टा होती है, सबके हितके लिये होती है। उन पुरुषोंके दर्शन करनेसे शान्ति मिलती है। संकट मिट जाते हैं, दुःख मिट जाते हैं, विघ्न टल जाते हैं। कारण क्या है? वह शुद्ध है, निर्मल है, पवित्र है। वह निर्मलता, श्रेष्ठता हरेक भाई प्राप्त कर सकते हैं।

पढ़े–लिखे हों, अपढ़ हों, गाँवके हों, शहरके हों, कैसी भी योग्यता क्यों न हो? अपना स्वभाव शुद्ध बनानेमें सब स्वतन्त्र हैं। धन पैदा करनेमें सब परतन्त्र; क्योंकि धन तो पैदा तब होगा, जब किसीकी तिजोरी खुलेगी। ऐसा हुनर करेंगे, जिससे दूसरेकी तिजोरी खुल जाय, तब पैसा मिलेगा। स्वभाव किसीकी तिजोरीमें बन्द थोड़ा ही है। पैसा तो तिजोरीमें बन्द रहता है, ताला लगा रहता है। शुद्ध स्वभावके कोई ताला लगा है क्या? यह तो हर एक कोई ले लो। सबके लिये खुली है एकदम ही। शुद्ध स्वभाव बना लेना,

कितनी बढ़िया बात? ऐसी स्वतन्त्रता हमलोगोंको भगवान्‌ने कृपा करके दी है। अब ऐसी कृपा करो, अपना स्वभाव शुद्ध बनाओ।

स्वभाव शुद्ध करनेका उपाय

स्वभाव शुद्ध कैसे बनावें? इसके लिये क्या उपाय है? उपाय एक ही बताया न, अपना अभिमान छोड़ो। अभिमान चुभता है। वह दूसरोंको खटकता है बुरा लगता है। सच्ची बातका अभिमान भी खटकता है और बुरा लगता है। अभिमान तो खटकता है ही। इसमें कहना ही क्या है? आप सच्चे हृदयसे किसीको मानते हैं कि ये पढ़े-लिखे हैं, अच्छे विद्वान् हैं, ऐसा आप हृदयसे मानते हैं, पर वह कहे कि 'क्या देखते हो? तुमने इतनी पुस्तकें देखी नहीं, जितनी हमने पढ़ी हैं। क्या समझते हो तुम?' यह बात आपको बुरी लगेगी। सच्ची बात है तो भी बुरी लगती है; क्योंकि उसके भीतरमें अभिमान बस गया है न। हमने ऐसा-ऐसा पढ़ा है, हम इतने विद्वान् हैं। अभिमान खटकता है। क्यों खटकता है? परमात्माके अंश हैं। सभी भाई बराबर हैं, किसीने गुण उपार्जन अधिक कर लिया तो अधिक हो गया। किसीमें वह गुण नहीं है तो कम रह गया। पर कम रहनेसे क्या हुआ? क्या वह परमात्माका प्यारा नहीं है? क्या परमात्माका अंश नहीं है? वहाँ तो बराबर ही है।

समाजमें कोई धनी हो गया। कोई गरीब हो गया। धनी और गरीब तो अलग-अलग हो गये पर रोटी-बेटीका जहाँ बर्ताव होगा तो हम भाई हैं, इसमें बड़ा-छोटा क्या है? सब एक समान ही हैं। धन किसीके ज्यादा हो गया। किसीके कम हो गया। इसी तरहसे आपकी योग्यता कम-ज्यादा हो गयी, पर परमात्माके लिये तो बराबर हो। अभिमान आप करते हो तो दूसरेको बुरा लगता है; क्योंकि वह तुम्हारेसे कम थोड़ा ही

है। अभी कम हो गया है, पर वास्तवमें तो कम है नहीं। उसको दु:ख होगा बेचारेको! आप अभिमान रखते हो, उस अभिमानसे अपना पतन होता है और दूसरोंको दु:ख होता है। अभिमान दूर करो तो यह स्वभाव सुधर जाय और स्वार्थकी भावना दूर करो तो स्वभाव सुधर जाय। ये दोनों स्वभाव बिगाड़नेवाले हैं। एक तो हमारी बात रहे और एक हमारा मतलब सिद्ध कर लें। हरेक बातमें यह घात रहे, किसी तरहसे मतलब सिद्ध हो जाय। मेरेको धन मिल जाय, मान मिल जाय, मेरेको आदर मिल जाय। मेरेको आराम मिल जाय, यह भाव रहता है न, इससे स्वभाव बिगड़ता है। तो अभिमानसे, अहंकारसे, स्वार्थ-बुद्धिसे स्वभाव बिगड़ता है! दोनों जगह निरभिमान हो करके—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

(मानस ७। ४६। २)

कपट गाँठ मनमें नहीं सब सों सरल सुभाव।
नारायण वा भगत की लगी किनारे नाव॥

कोई कपट करे तो उसके साथ भी कपट नहीं। ***'मंद करत जो करइ भलाई'*** ऐसा स्वभाव है। उसको याद करनेसे शान्ति मिलती है। ऐसी सरलता धारण करनेमें क्या जोर आता है, बताओ? कुटिलता करनेमें आपको जोर आयेगा। कुछ-न-कुछ मनमें कपट-गाँठ गूँथनी पड़ेगी न। सीधे सरल स्वभावमें है, जैसी बात कह दी। झूठ-कपट करोगे तो महाराज कई बातें खयालमें रखनी पड़ेंगी, फिर कहीं-न-कहीं चूक जाओगे। कहीं-न-कहीं भूल जाओगे। सच्ची बात है। सरलता है तो सब जगह मौज-ही-मौज है। अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग कर दूसरेके हितकी सोचो। कैसे हित हो? क्या करूँ? कैसे करूँ? दूसरोंका हित कैसे हो? दूसरोंका कल्याण कैसे हो?

दूसरोंको सुख कैसे मिले? ऐसे सोचते रहो। आपके पास धन न हो तो परवाह नहीं, विद्या नहीं हो तो परवाह नहीं, कोई योग्यता नहीं, कोई पद नहीं, कोई अधिकार नहीं हो तो कोई परवाह नहीं। ऐसा न होते हुए भी आपका भाव होगा दूसरोंके हित करनेका तो स्वभाव शुद्ध होता चला जायगा। जहाँ झूठ, कपट, अभिमान, अपनी हेकड़ी रखनेका स्वभाव होगा, वहाँ स्वभाव बिगड़ता चला जायगा। वह बिगड़ा हुआ स्वभाव पशु-पक्षी आदि शरीरोंमें भी तंग करेगा। वहाँ भी आपको सुखसे नहीं रहने देगा। अच्छे स्वभाववाला पशु-योनिमें भी सुख पायेगा। मनुष्य भी श्रेष्ठ हो जायगा।

स्वभाव सुधारनेका मौका यहाँ ही है। जैसे बाजार होता है तो रुपयोंसे चीज मिल जाती है। बाजार न हो तथा जंगलमें रुपये पासमें हों तो क्या चीज मिलेगी? यह बाजार तो यहाँ ही है अभी लगा हुआ। इस बाजारमें आप अपना शुद्ध स्वभाव बना लो, निर्मल बना लो। यहाँ सब तरहकी सामग्री मिलती है। मनुष्यशरीरसे चल दिये तो फिर हो जैसे ही रहोगे। फिर बढ़िया तो नहीं होगा, घटिया तो हो सकता है, वहाँ भी स्वभाव खराब हो सकता है; परंतु वहाँ उसको बढ़िया बात मिलनी बड़ी कठिन है। कुछ बढ़िया मिलेगी भी तो सांसारिक बातें मिलेंगी, पारमार्थिक नहीं। वहाँ स्वभावका सुधार नहीं हो सकता है। बढ़िया शिक्षक मिल जायगा तो वह शिक्षित हो जायगा, मर्यादामें चलेगा और नहीं तो ऐब पड़ जायगी तो उम्रभर दुःख पायेगा।

पशुके बचपनमें ही ऐब (आदत खराब) हो जाती है न। तो वह दुःख देनेवाला, मारनेवाला बन जाता है। छोरे उसे हाथ लगाते हैं, चिढ़ाते हैं, तब ऐसा करके वह मारना सीख जाता

है। फिर बड़ा होनेपर मारता है सबको ही। अब सिखा दिया बच्चोंने पहले। बुरा स्वभाव बन जायगा वहाँ भी। अतः बुराई तो वहाँ भी मिल जायगी। कौन-सी बाकी रहेगी? भलाईका मौका तो यहाँ ही है। यहाँ भी हर समय नहीं। अच्छा सत्संग मिलता है, विचार मिलता है, सत्-शास्त्र मिलता है, इन बातोंसे हमें अच्छाई सीखनी चाहिये। मौका खोना नहीं चाहिये। ***बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥*** (मानस ७। ४३। ७) देवताओंके लिये दुर्लभ है। ऐसा मानव-शरीर मिला। जिसमें अपना स्वभाव शुद्ध बना लें; निर्मल बना लें। फिर महाराज! मौज-ही-मौज। यह पूँजी सदा साथमें रहनेवाली है; क्योंकि जहाँ कहीं जाओगे तो स्वभाव तो साथमें रहेगा ही। बिगड़ा हुआ होगा तो बिगड़ा हुआ ही साथ रहेगा। जहाँ कहीं जाओ तो स्वभावको निर्मल बनाओ। अहंकार तथा अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित कैसे हो? दूसरेका कल्याण कैसे हो? दूसरेको सुख कैसे मिले? अपने तनसे, मनसे, वचनसे, विद्यासे, बुद्धिसे, योग्यतासे, अधिकारसे, पदसे किसी तरह ही दूसरोंको सुख कैसे हो? दूसरोंका कल्याण कैसे हो? ऐसा भाव रहेगा तो आप ऐसे निर्मल हो जायँगे कि आपके दर्शनोंमें भी दूसरे लोग निर्मल हो जायँगे।

तन कर मन कर वचन कर देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक झड़त है देखत उसके मुख॥

उसका मुख देखनेसे पाप दूर होते हैं। आप भाई-बहिन सब बन सकते हो वैसे। अब मीराबाईने हमारेको क्या दे दिया? परंतु उनके पद सुनते हैं, याद करते हैं तो चित्तमें प्रसन्नता होती है। पद गावें तो भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम होता है। उनके भीतर प्रेम भरा था, सद्भाव भरा था, इस वास्ते मीराबाई अच्छी

लगती है। एक दिन भी उनकी भिक्षा नहीं की। फिर भी मीराबाई अच्छी लगे, उनकी बात भी अच्छी लगे, उनके पद अच्छे लगें क्योंकि उनका अन्तःकरण शुद्ध था, निर्मल था। नहीं तो मीराबाईकी सास थी, पूजनीया थी वह मीराबाईके। पर उसका नाम ही नहीं जानता कोई। मीराबाई विदेशोंतक सब जगह प्रसिद्ध हो गयी, भगवान्‌की भक्ति होनेसे, नाम चाहनेसे नहीं।

नाम नाम बिन ना रहे, सुनो सयाने लोय।
मीरा सुत जायो नहीं शिष्य न मुंडयो कोय॥

न मीराबाईके बेटा हुआ। न मीराबाईने चेला बनाया। पर नाम उसका सब जगह आता है। साधुओंमें यह होती है कि हमारे चेला हो जाय तो हमारा नाम रह जाय। गृहस्थ कहते हैं, हमारे छोरा हो जाय तो हमारा नाम हो जाय। छोरा सबके हुआ, पर नाम हुआ ही नहीं। तीन-चार पीढ़ीके पहलेवालोंको आज घरवाले ही नहीं जानते, दूसरे क्या जानेंगे? भगवान्‌का भजन करो तो महाराज! कितनी विचित्र बात है? नाम रहे-न-रहे। आपका कल्याण हो जायगा। दुनियाका बड़ा भारी हित होगा। इस वास्ते अपने स्वभावको शुद्ध बना लें। शुद्ध कैसे बने? अपनी हेकड़ी छोड़ें। अपना अभिमान छोड़ दें। दूसरोंका आदर करें, दूसरोंका हित करें। जहाँ न्याययुक्त बात हो तो दूसरोंकी बात मानें। दो बात सामने आ जाय तो हमारी नहीं उनकी सही। उनकी न्याययुक्त बात है, बढ़िया बात है तो अपनी बात छोड़कर उनकी बात मानें। दोनों बढ़िया होनेपर भी उनकी बातका आदर करनेसे अपने स्वभावका सुधार होता है।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

(दिनाङ्क ११ अगस्त, १९८१)

प्रवचन—५

मनुष्य-जीवनकी सार्थकता

मनुष्य-शरीरका समय बहुत मूल्यवान् है। भाइयों और बहनोंने रुपये-पैसोंको मूल्यवान् समझा है। चीज-वस्तु, आदर, प्रतिष्ठा, मान, सत्कार और आराम इनको महत्त्व देते हैं कि ये हमें मिल जायँ; परंतु इन सबसे विशेष मूल्यवान् है अपने जीवनका समय। समयके समान कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं है; क्योंकि समय देकर हम मूर्खसे विद्वान् बन सकते हैं। समय लगानेसे पढ़ाई करके विद्वान् बन जायँ, समय लगानेसे धनवान् बन जायँ, समय लगानेसे बड़े यशस्वी बन जायँ, संसारमें कीर्ति हो जाय, समय पाकर हम बहुत बड़े परिवारवाले हो जाते हैं। समय लगाकर बड़े भारी मकान बना लें, बहुत-से काम कर सकते हैं। समयके बदले बहुत चीजें ले सकते हैं। संसारकी अच्छी-अच्छी चीजें ले लें। संसारका ही नहीं, धर्मका अनुष्ठान कर लें। स्वर्ग प्राप्त कर लें, स्वर्ग ही नहीं, परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं, तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जीवन्मुक्त हो सकते हैं। सदाके लिये महान् आनन्दकी प्राप्ति और दु:खोंका आत्यन्तिक नाश हो सकता है। इस मानव-जीवनके समयके सदुपयोगसे हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। सब तरहकी उन्नति हम समय लगाकर कर सकते हैं। समय लगाकर सम्पूर्ण चीजोंको इकट्ठी कर ली जाय तो भी इनके बदलेमें समय नहीं मिलता। ६०-७० वर्षका आदमी मरता है। वह लखपति, करोड़पति बन गया, धन-सम्पत्ति, जमीन, परिवार, बहुत-से मकान उसके हैं। वह कहता है साठ वर्षोंमें की हुई सभी वस्तुएँ मैं देता हूँ, उसके बदलेमें साठ महीने मिल जायँ मेरेको और जीनेके लिये।

तो साठ वर्षोंकी कमाई देनेपर भी साठ महीनेका जीवन मिल सकता है क्या? साठ न सही साठ दिन मिल जायँ। नहीं मिलेंगे।

काम क्या आयेगी कमाई? तीन कौड़ी नहीं बँटेगी, जिस समय मौत आ जायगी कुछ कौड़ी नहीं बँटेगी। चिन्ता और अधिक लग जायगी। कहाँ-कहाँ पड़ा है? कितना धन है?

आना आना जोड़कर करोड़ तहखाना भरे,।
खाना न खिलाना यह ताके मन माना है॥
दाना लोग दान देन कहे तो दीवानो कहे,।
प्रभुजी का बाना देख लेत खल काना है॥
जर जमीन जोरु अरु जायदाद जेती चीज,।
एक दिन जाना जाको नहीं जाना है॥
आखिर विराना ताकु सालग पिछाना नाहीं,।
ऐसे जग वंचक का ठौर न ठिकाना है॥

धन कमा-कमाकर इकट्ठा कर लिया खजाना; परंतु साथमें क्या चलेगा? यह सोचते नहीं हो। धन तो यहाँ इकट्ठा कर रहे हो। धनके लिये झूठ, कपट, बेईमानी, जालसाजी, विश्वासघात, धोखा आदि दे-देकर पाप इकट्ठे किये हैं, वे इकट्ठे होते हैं भीतर अन्तःकरणमें। वे पाप आपकी खराब नीयत बनानेमें, महान् नीच बनानेमें बड़े भारी सहायक हैं। ऐसे पाप करके धन कमाया यहाँ रहनेवाला। मरते समयमें यह धन तो कौड़ी एक साथ चलेगा नहीं, पाप कौड़ी एक पीछे रहेगा नहीं। यह हरेक आदमीको सोचना है कि हम कर क्या रहे हैं, इतना समय हमने लगाया है तो क्या लाभ किया? पचास, साठ, सत्तर वर्ष आ गये, इतने वर्ष तो गये, पर इतने वर्षोंमें हिसाब पूछनेवाला हो कि तुमने साथ चलनेकी पूँजी कितनी इकट्ठी की है। पूँजी साथ चलनेकी बढ़िया ली है कि घटिया।

दूसरोंको सुख पहुँचानेकी नीयत रखी है कि स्वार्थ करनेकी। अपकार करके धन अपने इकट्ठा करना, स्वार्थ ही कर लेना, इसमें समय लगाकर नीयत अपनी खराब-ही-खराब बनायी है क्या? वही बनायी है तो किसके काम आवेगी? यह जरा सोचो।

वर्तमान पतनका कारण

ऐसा विचार करनेका मौका मनुष्य-शरीरमें ही है। गाय, भैंस, कुत्ता, गधा आदि नहीं सोच सकते। और दूसरी योनिमें सोचनेकी ताकत नहीं है, बुद्धि नहीं है, विवेक नहीं है, जो भगवान्‌ने इस मनुष्य-शरीरमें दिया है। अब भोग भोगना, संग्रह करना, रुपये इकट्ठे करना, इस प्रकार करते-करते फूँक निकल जायगी, राम-नाम सत् बोल जायगी। खराब नीयत रह जायगी, यह दुर्दशा होगी। सज्जनो! हमें इस बातका दुःख होता है। हमारे भाई संग्रह करनेमें लगे हैं। केवल संख्या बढ़ानेमें ही लगे हैं, केवल संख्या ही। इतना धन हो गया, दस हजार हो गया कि लाख हो गया, करोड़ हो गया। संख्या बढ़ानेमें रात-दिन लगे हैं। वह संख्या अभिमान बढ़ायेगी, केवल अभिमान। अभिमानरूपी बहेड़ेके वृक्षकी छायामें आसुरी सम्पत्तिरूपी कलियुग विराजमान रहता है। अभिमान बढ़ेगा कि हम धनवान् हैं। वह अभिमान आपको न सत्संग करने देगा, न भजन करने देगा, न धर्म करने देगा, न आध्यात्मिक उन्नति करने देगा, पतनकी तरफ लगायेगा।

अभी कोई धनी आदमी करोड़पति है वह सुन ले कि सत्संग बड़ा अच्छा होता है। किसीने प्रशंसा कर दी तो मन चलेगा भी तो पूछेगा कि वहाँ कौन-कौन आते हैं? अमुक-अमुक सेठ आते हैं क्या? वे तो नहीं आते, साधारण आदमी आते हैं—ऐसा सुनेगा, तो मन चलनेपर भी जा नहीं सकेगा। वहाँ बेइज्जती कैसे करवावे? साधारण आदमियोंमें बैठ करके। हमारी इज्जतका

तो कोई आता ही नहीं आदमी। वहाँ जाकर हम बैठ जायँ। अपनी बेइज्जती करवावें। वहाँ न कोई बैठनेका ठिकाना है। हम कैसे जावें? अब दो-चार आदमियोंका भी अगर मन करे तो उनमेंसे पहले कौन जाय? कौन नाक कटावे पहले, इसके बाद दूसरा भी कोई हिम्मत करे तो ऐसी आफत हो गयी। धन होनेसे हुई न? मान हुआ, धन हुआ, पद मिल गया, अधिकार मिल गया, ऊँचे बन गये तो आफत और कर ली। ऊँचे बननेमें समय लगाया है, मेहनत की है, बुद्धि लगायी है। सिफारिश बहुतोंकी ली है तब जाकर ऊँचे बने और अब आफत हो गयी। भजन, ध्यान, सत्संग करना, अपनी आत्माका उद्धार करना, कठिन कर लिया। इस तरहके समझदार कहलाते हैं।

कितना काम कर लिया, साधारण आदमी था, इसके बाप तो मामूली थे, यह लखपति, करोड़पति बन गया, बड़ा भारी काम किया है। बड़ा भारी काम नरकोंमें जानेके लिये किया है। साङ्गोपाङ्ग दुःख पानेके लिये; जो दुःख कभी मिटे नहीं सदा दुःखकी परम्परा ही भोगते रहें। ऐसा काम किया तो क्या यही बुद्धिमानी है। मनुष्य-शरीर प्राप्त करके ऐसा ही करना बुद्धिमानी है क्या? एकको ही नहीं दूसरोंपर भी यही असर पड़े—हम भी धनी बनें। अरे भाई! करोगे क्या? किसके आगे रोएँ? कोई सुननेवाला नहीं। संस्थाएँ बनाते हैं, उनमें भी धन-संग्रह करते हैं। संस्थाओंके द्वारा उपकार कैसे किये जायँ, इसकी तरफ खयाल नहीं। बनाते तो हैं संस्था उपकारके लिये और लगी है भीतरमें धुन धन इकट्ठा करनेकी, अधिक धन संग्रह हो जाय, अधिक धन इकट्ठा हो जाय। धन अधिक हो जाय जिसके पास वही बड़ा है। आज माप-तौल यह हो गया कि धन जिसके पास ज्यादा हुआ वही बड़ा हुआ। सज्जनो! धनसे बड़ा नहीं होता है। बड़ा वह है जिसके मरनेके

बाद भी बड़प्पन रहे, ऊँचा बना रहे। जो नरकोंमें जावे, चौरासी लाख योनिमें सूकर-कूकर योनिमें जावे, वह बड़ा क्या हुआ? महान् पतन कर लिया न; परन्तु अब कहे कौन? सिखावे कौन? हमारे सन्तोंकी वाणीमें आता है—'**जगत भेष एकण मतो एकण दिश जावे।**' जगत् इधर जा रहा है, भेष (साधु) भी इधर जा रहे हैं, मकान बनाओ बड़ा-बड़ा और धन इकट्ठा कर लो। सब एक ही तरफ जा रहे हैं। सिखावे कौन? साधु-ब्राह्मण जिनको लोग अच्छी दृष्टिसे देखते हैं, अच्छे भी हैं, साधन-भजन करते भी हैं; परंतु उनके भी लगी है कि मान-बड़ाई कैसे हो जाय? धन कैसे हो जाय! बड़प्पन कैसे मिल जाय? ऊँचे हम कैसे बन जायँ। अरे, वास्तविक ऊँचे बनो, तत्त्वबोध प्राप्त कर लो, परमात्माकी भक्ति प्राप्त कर लो, सगुण-निर्गुण, साकार-निराकारकी बातें जो शास्त्रोंमें पढ़ी हैं, उनका साक्षात् करके अनुभव करो। इसके लिये यह ऊँचा पद है। इसकी प्राप्ति नहीं की तो क्या किया?

मनुष्य-जीवनकी सफलता—किसमें?

सन्तोंने कहा—'**एक राम बोलबो न सीख्यो तो सीख्यो गयो धूल में।**' और सब सीख लिया परंतु भजन-स्मरण नहीं सीखा तो धूलमें गया कुछ कामका नहीं। जैसे बिना जलका कुआँ खोदनेसे क्या लाभ? पचास-साठ फुट गहरा खोद लिया पर पानी तो है ही नहीं। तो क्या करें? इतनी तो कहीं दिवाल बनाते, मकान बनाते कोई छायामें बैठता। अब कुएँमें गाय, भैंस बाँधें कि सामान रखें या बैठे क्या करें? वह क्या काम आयेगा? पानी तो है ही नहीं उसमें। कुआँ बहुत गहरा है पर पानी नहीं है। ऐसे मानव-शरीर मिला मुक्ति नहीं की, भगवान्‌की प्राप्ति की नहीं। सगुणके दर्शन किये नहीं, निर्गुणका ज्ञान प्राप्त किया नहीं। तो क्या लाभ हुआ मानव-शरीर पाकर?

आपने उस तत्त्वका अनुभव किया है कि नहीं, ये केवल बातें करनेके लिये नहीं हैं। भगवान्‌की बातमें भी बड़ा लाभ है; परंतु केवल बात ही नहीं करनी है उसे प्राप्त करना है। प्रह्लाद भक्त हुए, ध्रुवजी महाराज हुए तो अच्छी बात है। तुमने कितनी भक्ति की है। काम तो खुदकी भक्ति आवेगी। भक्तोंके नाम लेनेसे भी पवित्रता होती है; परंतु जबतक करके नहीं देखें तो क्या हुआ भाई?

पर धन की बातां कियां, घर की भूख न जाय।
घर की भूख जब जाये, जो धन हाथ में आय॥

वह धनवान् है, वह करोड़पति है, राजा-महाराजा है, ऐसा है अच्छी बात। तुम्हारे तो उसका मुट्ठी चना भी काम आवेगा नहीं। उसके पास धन है तो पड़ा है, क्या फायदा? कोरी बातें करनेसे हमारे क्या लाभ? अपने कमाई करो। मिठाईकी बात करो कि ऐसा रसगुल्ला होता है, अमुक मिठाई ऐसी होती है, ऐसी होती है करते रहो क्या फायदा? अरे भाई! अपने भोजन बन जाय, भोजन पाकर तरान्तर हो जायँ तब ठीक है।

परमात्मतत्त्वका अनुभव हो जाय, कृतकृत्य हो जायँ, ज्ञात-ज्ञातव्य हो जायँ और प्राप्त-प्राप्तव्य हो जायँ—तीन बात। मनुष्यमें तीन शक्ति है—जाननेकी, करनेकी और पानेकी। वह पानेके लिये कुछ करता है कि कुछ मिल जाय तो पानेकी शक्ति है; कुछ जाननेके लिये चेष्टा करता है तो जाननेकी शक्ति है और कुछ कर लें तो करनेकी शक्ति है। जानना कब समाप्त होता है जब जानने लायक बाकी न रहे '**यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥**' (गीता ७। २) जिस तत्त्वके जाननेके बाद जानना कुछ बाकी न रहे। वह जान लिया तो ज्ञानशक्तिका उपयोग हुआ। संसारकी बहुत-सी विद्या जान ली,

बहुत-सी लिपि जान ली, तरह-तरहकी कला जान ली। बड़े-बड़े कलाकार कारीगर हो गये, पर पूछे कि मुक्ति हुई कि नहीं? अगर नहीं हुई तो जाननेसे क्या फायदा निकला? वह जानना क्या काम आयेगा? मुफ्तमें फँसावट होगी। फायदा क्या होगा? ईर्ष्या पैदा होगी। बड़ी-बड़ी जानकारी करके विद्वत्ता अनेक प्राप्त कर लें, विद्वत्तासे यश भी कर लें तो समझता है कि वाह-वाह हो गयी सा। '**यशः शरीरे भव मे दयालो**' यश प्रापणीय वस्तु है; परन्तु यश प्राप्त करके किया क्या तुमने? तुम्हारे हाथ क्या लगा? थोड़ा आप सोचो, विचार करो। संस्कृत-साहित्यके कवियोंमें कालिदास प्रसिद्ध कवि हुए।

पुष्पेषु चम्पा नगरीषु लंका नदीषु गङ्गा च नृपेषु रामः।
योषित्सु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः काव्येषु माघः कविकालिदासः॥

कालिदासका नाम है तो वह कोई तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त था सो बात नहीं है, उसका अभी पीछा जन्म हो जाय और यहाँ अभ्यास करे, पूर्वके अभ्यासके कारण विद्वान् बन जाय और संस्कृतका विद्वान् बनकर संस्कृतमें कविता करने लगे। लोग भी कहें वाह! वाह! कविता बड़ी सुन्दर है। कोई कहता है—'कविता तो कालिदासके समान है।' कोई कहे—'कालिदासके समान तो नहीं पर अच्छी है कविता।' कालिदासकी पहले प्रसिद्धि हो गयी। उसके खटकती है कि कालिदास दुष्ट कौन हुआ? जो हमारे यशमें धब्बा लगा दिया। हमारी कविता कैसी बढ़िया? पर लोग कहते हैं कालिदासके समान नहीं है। कालिदास कौन है? याद तो है नहीं कि तू ही था पहले।

आप कमाया कामड़ा किणने दीजे दोष।
खोजेजी की पालड़ी कांढे लीनी खोस॥

आपका बनाया हुआ यश है अब आपके ही चुभता है,

खटकता है। तो क्या निहाल करेगा? बताओ। उस यश-प्रतिष्ठाके लिये लोग मेहनत करते हैं, समय लगाते हैं, बुद्धि लगाते हैं।

अरे मनुष्य-शरीर प्राप्त किया है भाई! क्या मान-बड़ाईके लिये? वह भी चाहो तो भजनसे मिल जायगी सज्जनो! भगवान्‌की तरफ चलोगे तो यश, प्रतिष्ठा, मान, आदर सब चरणोंमें लोटेंगे। ऋद्धि और सिद्धि जाके आकर खड़ी है आगे। सब आपके सामने आ जायगी। गर्ज करेंगे वे। आज धनवान्‌की गर्ज धनवान् करते हैं, राजा-महाराजा करते हैं। वे नहीं करें तो क्या हुआ? भगवान् करते हैं खुद। भगवान्‌के दरबारमें उनका ऊँचा दर्जा है—

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजातां मुक्तां परित्यज्य विभर्ति गुञ्जाम्॥

'मैं तो हूँ भगतन को दास भगत मेरे मुकुटमणि।'

भगवान् जिसका आदर करे तो दुनियाका आदर क्या चीज है? दुनियाकी प्रशंसा, दुनियाका आदर कोई मूल्य रखता है क्या? आज गुण दीखे तो आज प्रशंसा कर दी, कल उसका कोई दोष हुआ तो निन्दा करना शुरू कर दिया। इनमें मान-बड़ाई करके भी क्या कर लिया? भैया! वह पद प्राप्त करो, जिसके पानेके बादमें करना बाकी न रहे। वह पद मिल जाय तो मिलना बाकी न रहे।

तीन शक्तियाँ—जानना, करना और पाना

मनुष्यमें तीन शक्तियाँ हैं। जाननेकी शक्ति है, करनेकी शक्ति है और कुछ हासिल करनेकी भी शक्ति है। जाननेकी शक्ति पूरी कब होगी? जब स्वयं अपनेको जानेगा तब जाननेका सदुपयोग हुआ। संसारको बहुत जान लिया। खुद तू कौन है इसका पता है ही नहीं। अमुक गाँवका अमुक नामका मैं हूँ। अरे! यह तो जन्मके बादका नाम, गाँव, जाति है; परंतु पहले तू कौन था

असली? अभी कौन है? और मरनेके बाद कौन रहेगा? तेरा स्वरूप-तत्त्व वास्तवमें क्या है? इस बातको जाना ही नहीं और सब जान लिया। अरे, असली बात जाननेकी थी वह नहीं जाना तो क्या जाना?

जो अपने-आपको जान लेता है ठीक तरहसे, अपरोक्ष रीतिसे किंचिन्मात्र भी सन्देह न रहे, तो वह जीवन्मुक्त हो जाय। तब इसका जानना समाप्त होता है। अपने-आपको जाननेसे जानना पूरा होता है। इतना किया, यह किया पर यह तो नहीं किया। तो करना भी समाप्त हो जाता है तब मनुष्यका जन्म सफल है। करना समाप्त कब होता है? अपने लिये काम करेगा तो कभी करना समाप्त नहीं होगा। अनन्त जन्मोंतक करते जाओ कभी काम समाप्त नहीं होगा। बाकी-का-बाकी रहेगा। अपने स्वार्थका, अभिमानका त्याग करके दूसरेके हितके लिये किया जाय तो आप कृतकृत्य हो जायँगे। जब अपने लिये कुछ भी करना बाकी न रहे तो '**यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते**' (गीता ७। २)। ऐसे '**बुद्धिमान्स्यात् कृतकृत्यश्च भारत**' वह कृतकृत्य हो जाता है। करना बाकी नहीं रहता। करने लायक सब काम कर लेता है। यह करना तभीतक बाकी रहता है, जबतक अपने लिये करता है। अपने लिये नहीं करता है तब उसका करना पूरा हो जाता है।

पापका फल—दुःख-प्राप्ति

तो किया क्या? कुछ नहीं किया, बाकी क्या बचा आपके पासमें? मेहनत की और क्या किया है? लाभ ले लिया, इतना ले लिया पर किया कुछ नहीं। लाखों-करोड़ों रुपये मिल गये। आज मरता है तो क्या साथ चलता है?

अरब-खरब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज।
तुलसी जो निज मरण है तो आवे केहि काज॥

अरब रुपया देंगे–सा पर अभी गला काट देंगे तो लेकर क्या करेंगे? जहाँ पड़ा है वहीं पड़ा रहेगा। उधर–से–इधर पड़ा रहा और क्या हुआ? तुम्हारे साथ क्या चला? कुछ नहीं। ऐसे क्या किया तुमने? बहुत काम किया। ये ऐसे बड़े जज हैं, बैरिस्टर हैं, वकील हैं। इतने रुपये लेते हैं रोजाना। रोजाना हजार रुपये कमाते हैं तो हजार कागज है, कागज। एक तुलीका काम। पहले जमानेके सिक्के हजार रुपयोंके साढ़े बारह सेर होते थे। एक दिनमें १२॥ सेर रुपये लाये तो महीनामें कितना लाये? बारह महीनेमें कितना लाये? इतना ढोकर इकट्ठा कर लिया। रात्रिमें हार्ट फेल हो जाय, मर जाय तो क्या किया? १२॥ सेर बोझा लाये रोजाना, इस कमरेसे उस कमरेमें लाकर रख दिया। एक गधा कितना ढोता है पत्थर एक दिनमें? उसका हिसाब करो। अरे, वह पत्थर जैसे ही ढोना है क्या? कैसी बात करते हो? वह तो पत्थर ढोता है, हम रुपये लाये हैं। इसके मरनेके बाद पत्थरमें, रुपयोंमें क्या फर्क है साहब? बताओ। पत्थर ढोया तो रुपया ढोया तो क्या फर्क पड़ा? आपके साथ सम्बन्ध है क्या? अब।

अच्छे–अच्छे धनी आदमी हुए हैं, आचरण अच्छे नहीं थे तो भूत–प्रेत–पिशाच बन गये, घरमें नहीं आ सकते। घरमें आने देते नहीं उसको। मन्त्रोंसे कीला कर अलग ही रखते हैं कि यहाँ न आ जाय कहीं। वह धनी आ करके आडा (दरवाजा) खटखटावे कि मैं आ गया हूँ पीछा। '**थांरे थान मकान, थांरे थान मकान अठे नहीं अठे नहीं।**' आप अपने स्थानपर रहो यहाँ नहीं, यह दशा है। वह कहता है मैंने घर बनाया है, मेरा रुपया है। यह दशा होगी। इसमें समझता है कि हमने इतना काम कर लिया। क्या काम आया, बताओ?

धन आदिके लिये जो पाप किये हैं वे पाप ऐसा नहीं कहेंगे कि थाँरे थान मकान। वह तो कहेंगे अठि आओ, चौरासी लाख योनिमें पधारो।

यहाँ किये हैं कर्म निशंक मानी, वहाँ जाब कछु नहीं आयेगा जी।
जब पूछेंगे हिसाब हजूर वांही तब लेखा दिया नहीं जायेगा जी॥

पता लगेगा कब उसका फल निकलेगा तब और यह भोगना पड़ेगा भाई। उससे बच नहीं सकते आप। आज चाहे दुनियाको धोखा दे दें, परंतु वहाँ धोखा नहीं होगा।

एक घटना हमने श्रीजयदयालजीके मुखसे सुनी। सेठजी श्रीजयदयालजी गीताप्रेसके संस्थापक, संचालक और संरक्षक थे, सब तरहसे उसको जन्म देनेवाले। वे चुरूके रहनेवाले थे। चुरूकी बात बताते थे कि जब हम आठ-दस वर्षके थे विश्वेश्वरलालजी खेमका जो अब नहीं हैं, मेरेसे मिले हुए हैं, मेरेसे बातें हुई हैं तो वे वृद्ध थे। एक लड़का महेश्वरियोंका बीमार हो गया ज्यादा। अधिक बीमार हो गया तो रात्रिमें कई लोग इकट्ठे हो गये। रात शायद ही निकाले मर जायगा, इस वास्ते बहुत-से लोग जग रहे थे। रात्रिमें बहुत ज्यादा बीमार हुआ, मरणासन्न हुआ तब उसका बाप रोने लग गया। यह बात बिलकुल बीती हुई है। बापको रोता देखकर बीमार पड़ा हुआ छोरा कहता है—अब रोनेसे क्या हो? काम करते समय सोचते तो आज यह दिन क्यों देखनेको मिलता? परन्तु उस समय तो सोचा नहीं अब रोनेसे क्या हो? वहाँ पासमें कई बैठे थे, बात क्या थी। उसने कहा कि यह इसी जन्मकी बात है, पुराने जन्मकी नहीं है। क्या बात है? तो कहने लगा कि देखो! पिताजीकी तरफ इशारा करके कहता है—अमुक संवत्‌में ये यहाँसे बम्बई गये थे; बीचमें एक स्टेशनपर मैं भी

उतरा। दस हजार रुपये मेरे पासमें थे। बंगाली अपना नाम बताया, वहाँका मैं था ही तो हम साथ हो गये दोनों ही। हम उतरे तो भड़भुंजारीके यहाँपर हम दोनों रात्रिको ठहरे। रात्रिको रुपये मेरे पास थे। भुंजारीने और इसने मिलकर मार दिया और रुपये ले आये तो मेरेको मारकर यह आया है।

वे लोग पासमें बैठे इधर-उधर देखने लगे कि बात तो ठीक दीखती है। यह उस समय गया था बम्बई (कर्जा था)। पीछे जल्दी लाकर उतार दिया तो आश्चर्य आया कि इतनी जल्दी कर्जा कैसे उतारा? तो वहम लोगोंके था ही। बात मिल गयी। वह बोला— इस वास्ते मैं आया हूँ बदला लेनेके लिये। इतना रुपया इसका खर्च हो गया है मेरे जन्ममें, इतना विवाहमें और इतना कुछ बाकी रहा है। एक बार और आऊँगा। अब ये रोवे, अब रोनेसे क्या हो? ऐसा बदला लेनेवाला लड़का था वह। पासमें बैठे लोगोंने पूछा—इसने तो इतना अन्याय, अत्याचार किया पर इस बणियेकी बेटीने क्या खराब काम किया जो यह विधवा हो गयी? गुस्सेमें आकर बोला, यह वही राँड भुंजारी है। दोनोंने मिलकर मारा था मेरेको, अब रोती रहेगी उम्रभर। उसका बाप बोला कि यह सन्निपातमें आ गया। सन्निपातमें आनेपर बादीमें बकता है। यह ऐसे ही बकता है, प्रलाप करता है। वायुका जोर है। उसने कहा कि 'वायुका जोर नहीं है, मैं सन्निपातमें नहीं हूँ। अमुक-अमुक सेठकी हवेलीके दक्षिणकी तरफ चार चोर भीत फोड़कर भीतर घुस रहे हैं और वे चोरी करेंगे। जाकर देख लो, अगर यह बात सच्ची तो मेरी बात भी सच्ची। वह बात झूठी तो मेरी बात भी झूठी।' उस समय तो वहाँ कोई गया नहीं। बात सबके सामने हो गयी और वह मर गया। लोगोंने सुबह देखा कि बात सच्ची है। भीत तोड़ी हुई है, चोरी हो गयी तो यह बीती हुई घटना है भाई!

यहाँ जो काम करते हो राई-राईका लेखा होगा।

जब हक पूछे हिसाब मांही तब लेखा दिया नहीं जायगा रे
सेवग साहब सो चोर……जम के हाथ बिकायगा रे

शीघ्र चेत करो ! मौत नजदीक आ रही है।

यह दशा होगी। इस वास्ते भाई ये किये कर्म जरूर भोगने पड़ते हैं। आपको इस जन्ममें कर्म बिगड़नेकी एक बात बतायी, सच्ची घटना है। ऐसी घटनाएँ मैंने सुनी हैं। ऐसा होता है और भोग भोगना पड़ता है। इस वास्ते मनुष्यको बड़ी सावधानी रखनी चाहिये।

डरते रहो यह जिन्दगी बेकार न हो जाय।
सुपने में किसी जीवका अपकार न हो जाय॥

पाप, अन्याय करके नरकोंके दुःखोंकी तैयारी कर लेना, कितनी बड़ी हानिकी बात है। मानव-शरीर मिला भगवान्‌की कृपासे। प्रभुकी प्राप्ति कर लो, तत्त्व-ज्ञान प्राप्त कर लो, जीवन्मुक्ति कर लो, मुक्त हो जाओ—ऐसा सुन्दर मौका मिला है। ऐसे मौकेको खो करके पाप-संग्रह कर लिया।

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूढता।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्॥

जिस क्षणमें, मुहूर्तमें भगवान्‌का चिन्तन नहीं हुआ वह बड़ी हानि है। '**महत् छिद्रम्**' बड़ी गलती हुई, 'अन्धता' मूढ़ता—बड़ी भारी नीची-से-नीची बात है कि भगवान्‌का चिन्तन नहीं किया। भगवान्‌के चिन्तनके लिये, उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही मानव-शरीर मिला है। यह धन कमानेके लिये, भोग भोगनेके लिये शरीर नहीं है। जैसा बाल्यावस्थामें ब्रह्मचर्याश्रम है, वह केवल विद्याध्ययन करनेके लिये है। उम्रभरमें वह विद्याध्ययनका मौका है, ऐसे चौरासी लाख योनियोंमें एक ब्रह्म-विद्याका

अध्ययन करो। उसके लिये यह मानव-शरीर है। उस मानव-शरीरको ऐसे ही खो देना, कितनी बड़ी हानिकी बात है और वह समय है आपके पास। अभी हम जी रहे हैं।

अभी धौंकनी चल रही है, आँखें टिमटिमा रही हैं। अभी चेत करें तो अभी काम कर सकते हैं। कितना कर सकते हैं कि पूरा-का-पूरा। भगवद्गीता कहती है मूर्ख-से-मूर्ख परमात्माकी प्राप्ति कर ले। पापी-से-पापी हो तो परमात्माकी प्राप्ति कर ले। थोड़े-से-थोड़े समयमें प्राप्ति कर ले। ये तीनों बातें याद कर लो। आप योग्य नहीं हैं, पढ़े-लिखे नहीं हैं, महान् मूर्ख हैं तो परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान्ने दसवें अध्यायमें कहा—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०।९)

मेरेमें तो मन लगा दे और मेरे लिये ही जीवन धारण कर। प्राणोंका उपयोग मानो भगवान्के लिये ही हम जीते हैं और कोई काम नहीं करना है। न संग्रह करना है, न भोग भोगना है। यश, प्रतिष्ठा, मान कुछ भी प्राप्त नहीं करना है। भगवान्को प्राप्त करना है। ऐसे विचार करके '**मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।**' आपसमें मिले तो भगवत्सम्बन्धी बात चलावे, भगवत्सम्बन्धी बात ही सुने, वही बात छेड़े। '**कथयन्तश्च मां नित्यम्**' सुननेवाले हों तो मेरी बात ही कथन करे औरोंको सुनावे। '**तुष्यन्ति च रमन्ति च**' इसमें ही सन्तोष लाभ करते हैं। जितना समय भगवच्चरणोंमें बीत गया, भगवान्के चरणोंमें समय लगा वही सफल है। ***'जो दिन जाय भजन के लेखे सो दिन आसी गिणती में।'*** आपकी गिनतीमें वही समय आयेगा जो भगवान्के भजनमें बीता। कौशल्या

माँने कहा राम! तुम्हारे बिना जो हमारे दिन बीते, ब्रह्माजी उन दिनोंको हमारी उम्रमें न गिनें। यह मनुष्य-शरीरका समय नहीं है। हमारा तो समय जो रामलला सामने रहे वही मनुष्य-जन्मका समय है। भजनके बिना जो समय गया वह निरर्थक गया, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। आज दिनतक जो निरर्थक समय गया है उसकी पूर्ति जन्म-भरमें नहीं हो सकती कभी। अगर हम अब तत्त्वकी प्राप्ति कर लें, भगवान्‌के दर्शन कर लें तो भी जो समय खाली गया, वह तो हानि ही हो गयी। समय खाली नहीं जाता तो उसी समय प्राप्त कर लेते कि नहीं? तो उतना समय खाली गया उसकी हानि हो गयी, उसकी पूर्ति कैसे हो? '***गया वक्त आवे नहीं पीछा।***' आज दिनतकका समय चला गया, अवस्था चली गयी, वह दिन पीछा आ सकता है क्या? वह तो गयी। गयी नहीं रही हुई भी जा रही है। रहा हुआ समय भी जा रहा है।

तज के सन्तोष सठ दीनन को मोस
मोस सब आने भरी खोस है।
गयो परदादे दादे पितु मातु राह जाय,
रहये रात दिन देखे निशी डोल रहे॥
तोऊ नहीं हीश कोउ कहे काहु करत
रोष बिन जाने देत दोष है।
ओस अम्बु को सो क्षण भंगुर शरीर यह,
अमर करनो चाहे यही अफसोस है॥

'**ओस अम्बु को सो**'—जैसे ओसका पानी कितनी देर ठहरता है। क्या कहें? बड़े दुःखकी बात है ऐसे शरीरको रखना चाहते हैं। सब शरीरधारी संसारसे मर गये पर हम तो रहेंगे ही—तो तुम कैसे रहोगे? तुम्हारा मसाला और तरहका है क्या? अमुकका हार्ट फेल हो गया तो तुम्हारा फौलादका

है क्या? कितने दिन ठहरोगे भाई। उसी मिट्टीसे ये बने हुए शरीर हैं। जिस मसालेसे वे मरनेवाले बने थे उसी मसालेसे ये बने हुए हैं और यह मृत्युलोक है मरनेवालोंका लोक है। यहाँ सब मरने-ही-मरनेवाले रहते हैं। ऐसे शरीरमें निश्चिन्त कैसे बैठे हो? कहाँ हो? किस देशमें हो?

कोई आज गया कोई काल गया कोई जावनहार तैयार खड़ा,
नहीं कायम कोई मुकाम यहाँ चिरकाल से यही रिवाज रही,
जाग मुसाफर देख जरा तेरे कूच की नौबत बाज रही,
सिर कूच की नौबत बाज रही......।

थारे माथे नगारा बाजे मौत ना रे,
तू तो जाने छे माने मरणो नथी रे।
मरणो पड़सी के आज के काल,
थांरे माथे नगारा बाजे मौत ना रे॥

मृत्युके दिन नजदीक आ रहे हैं भाई! आप-हम यहाँ आकर बैठे उस समय उमर जितनी बाकी थी उसमेंसे उतना समय हमारा बीत गया है। एक घण्टा कम हो गया है जीनेमें, मौत नजदीक आ गयी है। आ गयी नहीं है आ रही है, प्रतिक्षण नजदीक आ रही है और निश्चिन्त बैठे हैं! कौन रहने देगा यहाँ? समय आयेगा उसी क्षण चलना पड़ेगा।

हाकम आये हवालदार छोड़ नगरी,
छोड़ नगरी रे हंसा छोड़ नगरी।
हाकम आये हवालदार छोड़ नगरी। दोय घड़ी ठहरो यमराजा माया पड़ी है मेरी बिखरी, माया पड़ी है मेरी बिखरी।

तो इकट्ठी करके क्या निहाल हो जायगा। थोड़ा काम बाकी रह गया। वहाँ तो एक नहीं सुनेंगे एक, उसी क्षण चलो फिर देरी नहीं होगी। वह दिन आ रहा है, उसका खयाल ही नहीं

है। उस संसारमें है जहाँ मौत होती है, सबकी मृत्यु आती है और वह पता नहीं कब आ जाय? जन्मसे लेकर सौ वर्षकी उम्रतक कोई वर्ष आपने सुना कि इस वर्ष मौतका कोई भय नहीं है। एक वर्ष, दो वर्ष, दसवाँ, पचासवाँ कोई ऐसा वर्ष है कि अब तो निश्चिन्त रहो कि इस उम्रमें तो कोई मरता नहीं है। ऐसा देखा कभी। सबके लिये सौ-के-सौ वर्ष मौतके लिये खुले हैं। वर्षभरमें कोई महीना आपने देखा कि यह तो मलमास लग गया है तो अब इस महीनेमें मरेगा नहीं कोई। अमुक महीना आ गया है, ऐसा कोई महीना देखा जिसमें मरता नहीं। बारह महीना मौतके लिये खुला। महीनेमें ३०-३१ दिन होते हैं। कोई दिन देखा कि आज रविवार आ गया आज तो मरनेकी छुट्टी है। सब दिन खुले हैं। २४ घण्टे खुले हैं। यह नहीं कि इस एक घण्टामें कोई नहीं मरेगा। सब मिनट, सेकेण्ड मौतके लिये खुले हैं भाई! जीनेका भरोसा नहीं है मौत हरदम तैयार है। ऐसे खतरेमें हैं—और निश्चिन्त बैठे हैं। मानो वह काम कर लिया। जिस कामके लिये आये हो, वह काम किया कि नहीं? वह तो किया ही नहीं। फिर क्या किया तुमने? इतना धन कमा लिया, इतना यह कर लिया तो क्या काम आवेगा-सा? आज अगर मर जाओ तो क्या काम आवेगा? जितना भजन-स्मरण किया है, जितना अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है वह पूँजी साथ चलेगी। वह न करके और क्या किया तुमने?

मार ही काल अचानक चपेट हि, होई घड़ीक में राख की ढेरी।
ये मेरे देश विलायत है ये मेरे गज ये मेरे हाथी।
ये मेरी कामिनी केलि करे नित ये मेरे सेवक हैं दिन राती।
ये मेरे मात पिता पुनि बाँधव ये मेरे पुत्र अरु नाती।
सुन्दर ऐसे ही छाड़ चलेगो तेल जल्यो बुझी जैसे बाती॥

अब खत्म हो गया बस। ऐसे ही उमर खत्म होनेपर उसी क्षण जाना पड़ेगा। ये मेरे-मेरे कहलानेवाले काम नहीं आयेंगे। कोई स्नेह करनेवाला है नहीं। थोड़ा-बहुत कोई स्नेह करनेवाला होगा तो रो देगा बस। और वह क्या करेगा? बताओ कोई सहायता कर सकता है? कोई बचा सकता है। हृदयसे सहायता करनेवाला कोई नहीं है। कोई हो तो करे क्या? बस चलता नहीं किसीका। आज आप स्वतन्त्र हो अपनी करनी ऐसी कर लो—

कबिरा सब जग डरपे मरण से, मेरे मरण आनन्द।
कब मरिये कब भेटिये, पूरण परमानन्द॥

लोग तो मरनेसे डरते हैं, मेरे मरनेका आनन्द है, मौज हो गयी अपने तो बस मर जायँ तो ठीक है। लेना कुछ नहीं रहा, करना कुछ नहीं रहा। '***रज्जब धोखा को नहीं फल दे सूखा खेत॥***' अब सूख जाय तो क्या हर्ज हुआ? ऐसे मनुष्य-शरीरको सफल बना लिया जाय तो बड़ी अच्छी बात है। अगर अभी करना और जानना बाकी है तो जानना स्वयंके जाननेसे पूरा होगा। करना—उपकार करनेसे, दूसरोंके लिये ही करनेसे करना बाकी नहीं रहेगा। अपने लिये करनेसे तो करना बाकी ही रहेगा; क्योंकि करनेसे जो मिलेगा वह नाशवान् मिलेगा। वह तो खत्म हो जायगा, फिर करना बाकी रह गया तो रहे रीते-के-रीते ही। करते-करते उमर बीत गयी पर करना बाकी तो कई जन्म बीत जायँगे फिर भी करना बाकी रहेगा। घांणीका बैल उमरभर चलता है पर वहाँ-का-वहाँ ही रहता है। एक कदम इधर-उधर नहीं जाता रहता है वहाँ ही। एक बार मर गये फिर जन्मो, फिर मरो। अब यह चक्करका अन्त आयेगा कभी। वह करना सही करना नहीं है भाई! दूसरोंके लिये करना है, हमारे लिये कुछ करना नहीं है। 'कृत्यकृत्य' हो जायँगे। परमात्माको अगर प्राप्त नहीं करोगे तो प्राप्त करना बाकी रहेगा। परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद फिर '**नानवाप्तमवाप्तव्यम्**' फिर प्राप्तव्य बाकी नहीं रहेगा।

मानव-जीवनका खास काम

तीन शक्तियाँ हैं—जाननेकी, करनेकी और पानेकी। स्वयंको जाननेसे आप ज्ञात-ज्ञातव्य हो जायँगे, केवल दूसरोंके लिये करनेसे कृतकृत्य हो जायँगे और भगवान्‌की प्राप्ति होनेसे प्राप्त-प्राप्तव्य हो जायँगे। सज्जनो! इनमेंसे एक चीज पूरी कर लो तो तीनों चीजें हो जायँगी। ऐसी विलक्षण बात है। ज्ञात-ज्ञातव्य हुए तो प्राप्त-प्राप्तव्य और कृतकृत्य भी हो जायँगे। कृतकृत्य होते ही ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य हो जायँगे। ऐसे प्राप्त-प्राप्तव्य हो जाओगे तो ज्ञात-ज्ञातव्य और कृतकृत्य हो जाओगे। एक करनेसे तीनों काम सिद्ध हो जाते हैं ऐसी बात है। उसको प्राप्त करनेका अधिकार सबको है। मनुष्यमात्र उसको प्राप्त कर सकता है, कारण कि **यह मनुष्य-शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है।** इसमें अगर नहीं होगा तब कब होगा? कई लोग कहते हैं—हम तो ऐसे-ऐसे हैं। तुम कैसे ही हो चाहे। परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी हो, संसारका अधिकार बराबर दोको भी नहीं मिलता। मिल जाय तो सर्वोपरि नहीं हो सकता। एकको सर्वोपरि पद मिला—दूसरा भी सर्वोपरि हो गया तो वह पद सर्वोपरि नहीं रहा न? धनियोंमें भी सबसे बड़ा धनी बने तो एक हो सकता है। संसारभरमें एक धनी हो सकता है। दो हो गये तो सर्वोपरि नहीं हुआ। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होनेपर सर्वोपरि हो जायगा। सभी सर्वोपरि, सब ही महापुरुष, जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्स्वरूप। सब-के-सब सर्वोपरि हो जायँ, ऐसा पद मिल सकता है। कोई मूर्ख-से-मूर्ख हो उसको बुद्धियोग मैं देता हूँ, जिससे मेरी प्राप्ति हो जाय। देदीप्यमान ज्ञान-दीपकके द्वारा उनके अज्ञानान्धकारका नाश मैं कर देता हूँ। (गीता १०। ११) इससे बहुत जल्दी प्राप्ति हो जायगी मेरी। पहले तो मूर्ख-से-मूर्खका बताया। अब पापी-

से-पापी, अन्यायी-से-अन्यायी, दुष्ट-से-दुष्टके लिये बताते हैं। '**भजते माम् अनन्यभाक्**' उसने अब दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं भगवान्‌का भजन ही करूँगा निरन्तर, भजनके सिवाय और कुछ नहीं करूँगा। संसारका काम करूँगा तो भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करूँगा। गृहस्थका काम करूँगा तो गृहस्थ मेरा नहीं है ठाकुरजीका है। ठाकुरजीपर अहसान करता है कि आपका काम करता हूँ। आपका पालन-पोषण करता हूँ, आपके बच्चोंका पालन-पोषण करता हूँ। सभी मर जायँ तो रोएँ ठाकुरजी मैं क्यों रोऊँ? मैं तो काम करनेवाला हूँ। मेरा कोई है ही नहीं। काम करूँगा, सेवा करूँगा। ऐसे अनन्यभाक् मेरा भजन करता है। पापी-से-पापी जब अनन्यतासे लग जाता है अब पाप नहीं करूँगा तो '***रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की।***' (मानस १। २९। ५) उसके हृदयका भाव है उसको भगवान् आदर करते हैं। पाप सब नष्ट हो जायँगे। पापी-से-पापी भी बहुत जल्दी '**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा**' देरीका काम नहीं। कितनी विलक्षण बात है। '**शश्वच्छान्तिं निगच्छति**', '**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥**' (गीता ९। ३१) मेरे भक्तका विनाश नहीं होता। पापी-से-पापी तथा मूर्ख-से-मूर्ख थोड़े-से समयमें उसको प्राप्त कर सकता है '**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्॥**' अन्तकालमें मर रहा है, अन्तिम श्वास जा रहा है। '**स्थित्वा स्याम् अन्तकालेऽपि**' अन्तकालमें भी भगवान्‌की याद कर ले तो '***अन्तमति सो गति***' उसे प्राप्ति हो जाय। थोड़े-से-थोड़े समयमें मूर्ख-से-मूर्खको, पापी-से-पापीको, परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, कल्याण हो जाय, उद्धार हो जाय।

यह मनुष्य-जन्म सफल हो जाय उसके लिये इतना समय दिया, साठ वर्षतककी उम्र दी। अगर भगवत्प्राप्ति करते तो बहुत

जल्दी हो जाती, पर उधर तो गये ही नहीं आप। यह तो किया ही नहीं। एक परिवार गया प्रयागराज कुम्भ-मेलेमें। भीड़ ज्यादा देखकर, जंगलमें बाहर ठहर गये। धनी आदमी थे पहरा लगा दिया। दूध लाना पड़ता गाय ही खरीद ली, रसोई बनती है, भोजन करते हैं, आरामसे रहते हैं। तम्बू लगा दिये। रहे महीना भर माघमें फिर आये पीछा। उनको पूछा कहाँ गये थे? प्रयागराज! वहाँ त्रिवेणी नहाये कि नहीं? नहीं, हम तो बाहर रहते थे, प्रबन्ध हमारे बहुत बढ़िया था। वहाँ नौकर-चाकर सब काम करते थे। वहीं रहते रात-दिन। बड़ा अच्छा प्रबन्ध था, सब चीज मँगा लेते, सब होता था। ऐसे रहे वहाँ तो तब प्रयागराज क्यों गये? त्रिवेणीजी देखी ही नहीं, उसमें स्नान तो किया ही नहीं।

ऐसे मानव-शरीर प्राप्त किया, धन कमा लिया, बेटा-बेटीकी शादी कर दी, मकान बना लिये, बहुत-से मुकदमोंमें हम जीत गये। जीत करनेके लिये गये थे क्या मनुष्य-शरीरमें? मनुष्य-शरीर इसके लिये मिला था क्या? सब काम कर लिये। अरे, भजन किया कि नहीं। यह तो नहीं किया यह तो भूल गये और बताओ कोई कमी हो तो और सब कर लिया काम।

एक टोली आ रही थी पूछा क्या है? बरात-है-बरात जान। अच्छा तुम्हारेमें दूल्हा नहीं दीखता है, दूल्हा कहाँ है? नहीं लाये क्या? नहीं लाये सा, आपसमें पूछने लगे वह तो वहीं भूल गये। बड़े कामोंमें कोई-न-कोई भूल रह जाती है। बड़ा काम है जिसमें कसर रह जाती है। ***‘बींद (दूल्हा) बिहुणी जान कहो कुण काम की’*** सन्तोंने कहा है कि भजन नहीं किया तो क्या काम किया मनुष्य-शरीर ले करके? एक ही भूल हो गयी। बरात जा रही है बिना दूल्हाके तो रोटी भी कौन खिलायेगा? साथमें दूल्हा तो है ही नहीं। बींद (दूल्हा) तो है ही नहीं और बताओ।

जेवर, गहना, रुपये, पैसे हमारे पास कितना है? सब सामग्री हमारी तैयार है सा। एक भूल हो गयी। बींद (दूल्हा) भूल गये। ऐसे मानव-शरीर प्राप्त किया जिसमें भजन करना तो भूल गये और सब काम ठीक कर लिया। यह तो भूल हो गयी। यह काम तो और जगह हो जाता। एक सुअरनीके ग्यारह बच्चे देखे हैं। यह कौन-सा काम बाकी रहता। और जगह ही हो जायगा खाना, पीना, सोना आदि '**खादते मोदते नित्यं कूकरः सूकरः खरः। तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी॥**' यह तो वहाँ ही हो जायगा भाई! भजन कहाँ होगा? परन्तु इधर तो ध्यान ही नहीं, खयाल ही नहीं है। यह होश कब होगा भाई! होश होनेपर क्या होगा? समय निरर्थक न जाय, अच्छे-से-अच्छे, ऊँचे-से-ऊँचे काममें समय लगाया जाय।

मानव-शरीरका समय है सज्जनो! यह उमर बड़ी भारी कीमती है। इसमें बड़ा भारी काम किया जा सकता है। वह समय खराब कर दिया केवल पापोंमें, खाने-पीनेमें, ताश-चौपड़में। खेल देखते हैं, तमाशा देखते हैं, वाइस्कोप देख लिया, थियेटर देखने गये थे। अरे! समय बरबाद कर दिया तुमने। क्या फायदा निकला बताओ? आपने बहुत सिनेमा देख लिया, हमने नहीं देखा, दोनोंका मिलान करो। क्या आपमें विलक्षणता आ गयी? क्या विचित्रता आ गयी? भोग भोगनेसे क्या विचित्रता आ गयी? धन कमा लिया, भोग भोग लिया तरह-तरहके। जिसने नहीं भोगा उसे मिलान करके देखो क्या फर्क आता है? मेरे तो ऐसी बात आयी है पहले। मूर्खताकी बात बतावें।

एक आदमीको देखा, उनके भोग-सामग्री बढ़िया थी। मनमें आया कि इसके तो भोग-सामग्री है हमारे नहीं है। फिर विचार किया कि भोग भोगनेवालेमें और हम न भोगनेवालेमें अन्तर क्या

है? इसमें क्या विलक्षणता है? विलक्षणता हमें मिली नहीं। नहीं तो हम भी विचार करते कुछ। नशा पता करनेवालोंमें देखा तो उनमें भी कुछ विचित्रता नहीं है। गोरखपुरमें मैंने व्याख्यानमें कह दिया था—ये नशा पता जितना करते हैं। अधिक-से-अधिक नशा करनेवाला आ जाओ मेरे सामने, मेरे-जितना बोल दो, मेरे-जितना चलो, मैंने उद्दण्डता कर दी कि कुश्ती आ जाओ मेरेसे भले ही। मैंने नशा पता नहीं किया, आपने बहुत किया है। आपमें क्या विलक्षणता आयी? समय बरबाद कर दिया, जीवनके बदलेमें आपने हासिल क्या किया? मानव-शरीर मिला है न। मानव-शरीर प्राप्त करनेपर कुछ अलौकिकता प्राप्त हो जाय तब तो उसकी महिमा है।

बड़ें भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(मानस ७। ४३। ७)

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते।
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः॥
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्-।
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(भागवत ११। ९। २९)

एकादश स्कन्धमें कहते हैं "**सुदुर्लभम्**" महान् दुर्लभ।

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

(विवेकचूड़ामणि ३)

भगवत्कृपा ही जिनकी प्राप्तिका कारण है वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्त होनेकी इच्छा) और महान् पुरुषोंका संग—ये तीनों ही दुर्लभ हैं। ऐसा '***दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।***' ऐसी दुर्लभ चीज सुलभतासे मिल गयी। '***पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥***' ऐसा समय

मिल गया है, ऐसा मौका मिल गया है। सज्जनो! गीता–जैसा ग्रन्थ मिल गया, अच्छे–अच्छे सन्त महापुरुषोंकी वाणी मिल गयी। उन लोगोंने कहा—वह मार्ग हम कुछ जानने लग गये, हमारी थोड़ी बहुत दृष्टि उधर चली गयी। सत्संग भी करते हो तो यह करनेका क्या असर हुआ? क्या किया? अगर इस काममें सच्चे हृदयसे नहीं लगे तो क्या किया? समय मिला हुआ है वह जा रहा है। प्रतिक्षण जा रहा है।

भजन बिना दिन जावे, अरे मन तूँ गोविन्द क्यूँ नहीं गावे?
भजन बिना दिन जावे, दिन जावे॥
पल पल करते छिन छिन बीते, छिन से घड़ी हो जावे।
फिर घड़ी घड़ी करते पहर बदीती आठ पहर घुल जावे।
भजन बिना दिन जावे । मन तूँ गोविन्द क्यूँ नहीं गावे?।

अब सावधान होओ, ***अब गयी सो गयी राख रही को, मनवा अजहुँ मान सही रे।***

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम हैं बन्धन जीव को।
बारहिं बार विषय फल खात, अघात न जात सुधा रस पी को॥
आन अज्ञान तजो अभिमान, कहि सुन कान भजो सिय पी को।
पाय परंतप हाथ सुं जात, गयी सो गयी अब राख रही को॥

अब जितना समय बच गया है वह लगा दो।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(मानस ७। ४३)

इस वास्ते भाई! अभी मौका मिल गया है। अपना समय सब लगा दो भगवान्‌के भजनमें।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

(दिनांक १२ अगस्त, १९८१)

प्रवचन—६

भाई-बहन उद्योग नहीं करते, इसमें तत्त्व क्या है? सार चीज क्या है? उस तरहसे मैं बात बताता हूँ, आप ध्यान देंगे। रुपयोंकी महत्ता बहुत बैठी हुई है। सब जगह ही है, पर यहाँ कुछ विशेष देखनेमें आती है। अब क्या करें? फिर कहता हूँ आप ध्यान दें। ध्यान देनेकी बात यह है कि हमारे मनमें रुपयोंकी इच्छा जोरदार होगी तब रुपये सुख देंगे। संसार जो सुख देता है वह संसार कोई सुख देनेका सामर्थ्य नहीं रखता है। **हमारी इच्छा होनेसे संसार सुखदायी दीखता है।** जिस विषयमें हमारी इच्छा नहीं है, उस विषयमें संसार सुख नहीं दे सकता। यह एकदम पक्की बात है। कृपा करके मेरी बात सुन लें। रुपयोंका लोभ मनमें न हो। रुपया मेरेको मिले, ऐसी तृष्णा न हो, उसको रुपया सुख नहीं दे सकता।

रुपयोंमें सुख नहीं

सुख देनेकी ताकत रुपयोंमें नहीं है, आपके लोभमें है। मेरी बातका मनन करते चले जायँ। इसे समझनेके लिये जितनी शंका करें उतनी बढ़िया है। आप गहरी रीतिसे शंका करोगे तो मेरे प्रसन्नता बहुत होगी। मेरेको आप भेंट-पूजा दे दो, भोजन, कपड़ा दे दो और कुछ दे दो उससे उतना मैं राजी नहीं होऊँगा। पक्की बात है। जितना इस विषयमें समझोगे तो मैं बड़ी भारी कृपा समझूँगा, मामूली कृपा नहीं, बड़ी भारी कृपा समझूँगा। इस बातको समझोगे तो। सीधी बात है बिना इच्छाके पदार्थ सुख दे सकता नहीं कभी भी। यह आपके जँचे या न जँचे, इसका तो पता नहीं, परंतु बात बिलकुल

सोलह आना सच्ची है, इसमें किञ्चिन्मात्र भी इधर-उधर है नहीं। पक्की बात है। रुपयोंमें लगे हो, हाय रुपैया! हाय रुपैया! उसमें लगे हो। वह रुपया सुख देता है कब? जब आपके इच्छा होती है तब। इच्छा बिना सुख नहीं दे सकता रुपया। अगर सबको सुख दे तो कुत्तेको भी सुख देना चाहिये। रुपयोंकी थैली रख दो उसके सामने, वह पेशाब करके चला जायगा। रुपयेमें ताकत है तो कुत्तेको भी सुख मिलना चाहिये। अब आप कह सकते हो कि कुत्ता तो समझता नहीं, परंतु अब वह उदाहरण तो कैसे दूँ। सुनी हुई बात तो मैं कह दूँ, पर आपको समझानेकी मेरे पास ताकत नहीं है।

जिसके हृदयमें वैराग्य है, रुपयोंमें राग नहीं है, आसक्ति नहीं है, प्रियता नहीं है—ऐसे पुरुषोंको रुपया सुख नहीं दे सकता। अब कैसे समझाऊँ बताओ। आपको वैराग्य हो तब पता लगे। बिना वैराग्यकी बात भी मैं कह सकता हूँ। मेरे कहनेमें बहुत उत्साह है। आप थोड़ी कृपा करें। अधिक-से-अधिक लोभी आदमीको लो, जो रुपयोंके लिये कुएँमें पड़नेको तैयार। कहीं रुपये मिल जायँ, बस। ऐसा अधिक-से-अधिक लोभी, उसको लाकर हाजिर कर दो और उसके सामने कह दिया जाय और रुपयोंका ढेर लगा दो। एक-एक रुपया आप गिनते जाओ। जितने गिनोगे उतने आपके। गिनते ही जाओ। बन्द कर दिया तो फिर बन्द हो जायगा। वह कितनी देर गिन सकेगा? आठ पहर भी नहीं गिन सकता।

आप कहो कि भूख लगती है, प्यास लगती है, टट्टी-पेशाब लगती है। अच्छा छुट्टी दे देंगे। भोजन कर लो, पानी पी लो, फिर बैठ जाओ, टट्टी-पेशाब फिर आओ, फिर बैठ जाओ। तो क्या आठ पहर गिन सकोगे? है किसीकी ताकत?

अभी मेरे पास रुपया नहीं है, नहीं तो अभी आपको करके बता दूँ। नहीं गिन सकोगे। नहीं रह सकोगे। टिक सकोगे नहीं। अब तो नींद आती है तो नहीं भाई, नींद नहीं लेना और तुम जो कुछ कर लो। नींद नहीं। नींद लोगे तो रुपया नहीं मिलेगा। रुपया छोड़ो मत। टट्टी-पेशाब भी जाओ तो हाथमें पकड़े जाओ। भोजन करो तो भी पकड़े रखो रुपयोंको। पानी पीओ तो रुपयोंको पकड़े ही पानी पी लो। नींदमें छूट जायगा। याद नहीं रहेगा। रुपये छूट जाते हैं तो इसका मतलब आप रुपयोंको नहीं चाहते हो! नहीं चाहते हो! नहीं चाहते हो! अगर चाहते ही हो तो रुपयोंको छोड़ो मत।

सज्जनो! रुपयोंकी चाहना आपके है नहीं। मूर्खतासे लोभ करके चाहना पैदा की गयी है। यह आपका काम नहीं है, नहीं है, नहीं है। भगवान्के साथ सम्बन्ध आपका छूट सकता नहीं। रुपयोंके साथ सम्बन्ध आपका रह सकता नहीं। इतने रुपये दूर हैं आपसे। सब भोगोंसे दूर हो जाते हो। अब जरा एक बातपर खयाल करके देखो। रुपयोंके, भोगोंके साथ रहते-रहते आपका बल, बुद्धि, आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है या रुपये आदि छोड़कर जब नींद गहरी ले लो तब आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है। बताओ, विचार करके बोले तब पता लगे।

नींद आती है गहरी। उस समय पदार्थ, रुपये, भोग याद नहीं रहते। उससे शरीरको शक्ति मिलती है, स्वास्थ्य बढ़ता है। मनमें, बुद्धिमें, इन्द्रियोंमें स्फूर्ति आती है, स्वच्छता आती है, निर्मलता आती है, ताकत आती है। इनके संगसे ताकतका नाश होता है। इस बातको खूब विचार करो आप। आपको खुराक रुपये, पैसे नहीं दे सकते, जितना इनका वियोग आपको शक्ति देगा। रुपयोंका, संसारके पदार्थोंका, व्यक्तियोंका वियोग

आपको जो सुख देगा—वह सुख इनका संयोग नहीं दे सकता। मैं बड़े जोरसे कहता हूँ। मेरेसे बुद्धिमान् आदमी एकान्तमें मिलें और बात करें। हमारी बात कभी फेल हो नहीं सकती। इतनी पक्की और सच्ची बात है। ठोस बात है। हमारे पीछे भगवान्, शास्त्र, धर्म, ऋषि-मुनि सब हमारे साथ हैं। आपके साथ लोलुप हैं। नारकीय जीव हैं और कोई नहीं है आपके साथ।

अनुभवका आदर करो

गाढ़ी नींदमें क्या होता है? रुपये छूटते हैं। रुपये याद नहीं रहते। परिवार याद नहीं रहता? भोग याद नहीं रहता। गाढ़ी नींद आ जाती है। अन्तःकरण स्वच्छ होता है। इन्द्रियोंमें, मनमें, बुद्धिमें, सबमें शक्ति आती है। स्फूर्ति आती है, बल आता है। इधर इनके संयोगसे शक्ति नष्ट होती है। पतन होता है। रोग पैदा होते हैं और गाढ़ी नींदसे रोग दूर होते हैं। पदार्थोंके छूटनेसे जो सुख है, पदार्थोंके साथ मिलनेसे वह सुख नहीं है। यह आपका अनुभव है। इतनेपर भी आप छोड़ते नहीं, अब क्या बताएँ? जहाँ इनका संग छूटा कि वहाँ परमात्माका संग है। परंतु वह नींदमें है, बेहोशीमें है। बेहोशीका संग भी शान्ति देनेवाला है। होशपूर्वक संग हो तो निहाल हो जाओगे आप। यह कहते हो कि अनुभव नहीं है। पर आपको अनुभव है इस बातका। पर आप अनुभवका आदर नहीं करते हो। इस तरफ ध्यान नहीं देते हैं। कृपा करो, ध्यान दो थोड़ा-सा। एक कल्पना करो।

मेरे मनमें लग गयी कि यह घड़ी हमारेको मिल जाय—ऐसा विचार हुआ। ऐसा विचार होनेसे क्या हुआ है कि यह घड़ी मेरे मनमें बस गयी, अब मनसे छूटती नहीं। चलते-फिरते याद आती है कि घड़ी एक बढ़िया हमारे हाथ आ

जाय। ऐसी मनमें बस गयी, अब घड़ी मिल गयी। किसी रीतिसे घड़ी मिल गयी। मिलते ही सुख होता है, घड़ी मिल गयी। मिलते ही सुख क्या हुआ कि भीतरके मनसे घड़ी छूटी है, घड़ीके मिलनेका वह सुख नहीं हुआ है सज्जनो! मनसे घड़ी निकली है उसका सुख हुआ। इस बातको आप समझें। कृपा करें, इतनी मेहरबानी करें। ध्यान दें।

मनसे घड़ी निकल गयी, सुख हो गया। घड़ीमें अगर ताकत हो तो इसको पकड़े रहो, हरदम अगर सुख हो जाय। शर्त कर लो, होड़ लगा लो, कभी सुख नहीं हो सकता। घड़ी मिलनेसे ही अगर सुख होता हो तो घड़ीको पकड़े ही रहो, सुख होना चाहिये। कभी नहीं होगा। मनसे घड़ी निकलते ही सुख होगा। मेरे मनसे जो बात निकले वही बात है। मारवाड़ीमें ऐसी कहावत है—***तू भी थारे मन री काढ़ ले***— निकाल ले मनकी। मनकी निकालता है और कुछ नहीं है संसारका सुख।

जो आप कहते हो संसारसे सुख मिलता है। भगवान्‌से सुख मिलता नहीं। यह गलत है आपकी बात। संसारका सुख मिलता कहाँ है? मनकी निकलती है। वह सुख दीखता है। वियोगमें सुख है, रुपयोंके वियोगमें सुख है, घड़ीके वियोगमें सुख है, पदार्थोंके वियोगमें सुख है। इनके मिलनेसे सुख नहीं होता। आप विचार नहीं करते। मूर्खताके कारण मान लेते हो कि घड़ी मिलनेसे सुख हुआ। घड़ी मिलनेसे सुख नहीं हुआ है। घड़ी भीतरसे निकल गयी, उसका सुख हुआ है।

आपको संसारके वियोगमें सुख है। संसारके संयोगमें सुख नहीं है। बिलकुल पक्की बात है। आप समझें चाहे न समझें। इस बातमें फर्क नहीं है। हमने अच्छे-अच्छे पुरुषोंसे सुना है। अच्छी-अच्छी पुस्तकोंमें पढ़ा है और विचारमें आती है

मेरे ये बात। इसमें संदेह नहीं है। जिस किसी चीजके मिलनेसे सुख मानते हो यह बिलकुल गलत है, बिलकुल गलत है। जिसका आपके मनमें ज्यादा आग्रह है, प्यार है, स्नेह है, राग है, वह चीज मिलनेसे मनसे निकलती है। उसका सुख होता है। वस्तुओंका सुख नहीं होता। अगर वस्तुका सुख हो तो वस्तु पासमें रहनेसे दुःख नहीं रहना चाहिये। उन चीजोंके रहते हुए ही दुःख होता है तो उस चीजमें सुख कहाँ है?

सत्संगसे शान्ति

परमात्माके मिलनेपर दुःख कभी भी आयेगा ही नहीं। आपको ही नहीं परमात्माके सुखमें सुखी रहनेवालोंके दर्शनोंसे शान्ति मिलेगी। रुपयोंके, भोगोंके याद करनेसे जलन पैदा होगी। जितना-जितना इनका चिन्तन होगा उतनी हृदयमें आग लगेगी। अशान्ति पैदा होगी। ह्रास होगा, पतन होगा, रोग होंगे, शोक होगा, चिन्ता होगी, भय होगा, उद्वेग होगा। मार आफत-ही-आफत होगी। भगवान्‌की याद करते ही शान्ति, आनन्द, प्रसन्नता, मस्ती आवेगी भीतरसे।

कंचन खान खुली घट माँही। रामदास के टोटो नाँही॥

भीतरसे आनन्दकी खान खुल जायगी। ऐसे पुरुषके कहीं दर्शन मिल जायँ तो आपको शान्ति मिलेगी, आपका पाप कटेगा। महान् शान्ति मिलेगी, वह किसी भोगसे नहीं मिल सकती। शास्त्रोंमें आता है—**येषां संस्मरणात् पूतः सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।**

उन महापुरुषोंके याद करनेसे घर-के-घर पवित्र हो जाते हैं। जिनके हृदयमें भोगोंका राग नहीं है, जो पदार्थोंके गुलाम नहीं हैं, भोगोंके, रुपयोंके दास नहीं हैं—ऐसे पुरुषोंके दर्शनसे शान्ति मिलती है, पाप दूर होता है। कोई भोग नहीं है, न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न

मान है, न बड़ाई है, न आराम है—ये आठ चीजें खींचनेवाली हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँच विषय और मान, बड़ाई और आराम ये तीन—कुल आठ हैं। इन आठ चीजोंसे सुख होता है। खूब याद कर लो।

सत्संगमें शान्ति मिलती है कि नहीं। आपने अगर सत्संग किया है मन लगा करके, तो आप नट नहीं सकते। सच्चर्चा होती है, रामायणका पाठ हो रहा है, उस पाठमें क्या रुपये मिलते हैं? क्या भोग मिलते हैं? क्या मान मिलता है? क्या बड़ाई मिलती है? क्या शरीरमें आराम ज्यादा मिलता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमेंसे क्या है? आठों बातें नहीं हैं और सुख मिलता है तो वह किस चीजका सुख है—बताओ?

कहते हैं—भगवान्‌का सुख मिलता नहीं। आप उसका तिरस्कार करते हो, अपमान करते हो, मिले बिना कोई रह नहीं सकता। पारमार्थिक सुखके बिना कोई जी नहीं सकता। जीनेका केवल अगर कोई स्रोत है तो परमात्मा है। उसीसे ही आप जी रहे हो नहीं तो मर जाओगे। आपकी दृष्टि भ्रष्ट हो गयी, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अकलको बेच दिया रुपयोंमें, टक्कोंमें। अकलका टका हो गया कैसे बतावें? अब बोलो, आपने रामायणका पाठ किया सामने, आपने देखा। उस रामायण-पाठमें रुपये मिले हैं क्या? फिर भी लोग खिंचते हैं, पढ़ते हैं, क्या सुख है यह। परमात्मसुख मिला नहीं तो यह क्या मिला है?

'राम, राम, राम' कितनी दुर्दशा हो रही है, उन चीजोंकी दासतामें। कष्ट भोगना पड़ता है, अपमान भोगना पड़ता है, निंदा भोगनी पड़ती है, दु:ख भोगना पड़ता है। चौरासी लाख योनिका दु:ख भोगना पड़ता है और यहाँ रहते हुए भी कितना अपमान, कितनी निंदा, कितना नीचा देखना पड़ता है। भीतरसे

गरज चली जाय तो महाराज—***चाह गयी चिन्ता मिटी, मनवा बेपरवाह । जिनके कछू न चाहिये सो साहनपत साह॥*** बादशाहोंका बादशाह है वह, जिसके भीतर गुलामी नहीं है। ऐसी बातमें संदेह नहीं है केश-जितना भी—रतिमात्र सन्देह नहीं है। ऐसी सच्ची बात है।

आप चेतन होकर, परमात्माके साक्षात् अंश होकर नित्य-निरन्तर रहते हो। बालकपनसे आप वही हो, पदार्थोंका आपके साथ संयोग हुआ, वियोग हुआ, उत्पन्न हुआ और नष्ट हो गया। ऐसा है फिर भी उत्पन्न और नष्ट होनेवालोंकी गुलामीमें लग रहे हो। कुछ होश आना चाहिये न। आप वे ही रहते हो, ये पदार्थ बदलते हैं। जो बदलते हैं उनके पीछे पड़े हो। वे साथ रहते नहीं। मर जाओगे तो साथ रहेंगे नहीं?

जिन्दगी भी साथमें नहीं, बालकपनमें खिलौनोंसे बड़ा सुख मिलता था। अब खिलौना कितना सुख देते हैं? जरा बात याद करो। कागजके टुकड़े—काले, पीले, सफेद, कंकड़ उनको पकड़ लेते थे, उनसे सुख लेते थे। आज वह सुख दीखता है क्या? ऐसे ही आज इन पत्थरोंके टुकड़ों—हीरे, मानिक, पन्ना आदि रत्नमें इन कागज (रुपयों)-में बैठे हो। आप क्या जान सकते हो? ***माया सो मजूर बन्दो का जाने बन्दगी***—वह क्या जाने इस बातको। थोड़ा-सा विचार करो तो आपके लिये असंभव नहीं है। कारण कि आपने डेढ़ महीनेसे ऊपर सत्संग किया है। सत्संग करके देखा है, उन भाई-बहिनोंको समझाना कठिन नहीं है। जिसने कभी सत्संग किया ही नहीं, उसको समझाना कठिन है। इस वास्ते मारवाड़ीमें कहावत है—‘***मूर्ख ने मारणू सौरो समझावणू दोरो***’ वे नहीं समझ सकते इस बातको।

शंका—परमात्माका सुख मिले तो छोड़ दें।

समाधान—अभी व्याख्यानके बाद सौ-दो-सौ, पाँच सौ, तैयार हो जाना कि हम पारमार्थिक सुख जानते ही नहीं। सिद्ध करना इस बातको। सिवाय पारमार्थिक बातके यहाँ क्या मिलता है, बताओ? जिसमें माताएँ-बहनें भागी-भागी आती हैं, भाई लोग भागे-भागे आते हैं, सुनते हैं, बैठते हैं। क्यों आते हो? क्या संसारका सुख मिलता है? अब मैं समझानेमें अपनेको इतना समझदार नहीं मानता हूँ। परंतु मेरे समझमें आती है कि संसारका जो सुख मिलता है सब-का-सब परमात्माका ही है। संसारका है ही नहीं। जैसे यह चीज मिल जाय तो सुख हो जाय। सुख क्यों हुआ कि चीज मिलते ही मनसे वह निकल गयी। अब वह निकल गयी तो परमात्मा रह गये। संसार छूटा और परमात्मा पहलेसे तैयार। परमात्मा छूटता नहीं है। परमात्मा हरदम रहते हैं। आप विमुख होते हो। परमात्मा विमुख नहीं होता है। आप पदार्थोंकी चाहना करते हो इससे परमात्मासे विमुख होते हो और इस वास्ते रोते हो।

जहाँ चीज मिली, मनसे छूटी तो चट परमात्मा तैयार। वह जो आनन्द मिलता है वह परमात्माका है, इसका नहीं है। आप कहते हो कि यही है। कुत्ता हड्डी चबाता है और हड्डी भींचनेसे दाँत टूट जाता है। मुखमेंसे खून निकलता है। वह समझता है हड्डीमेंसे आ रहा है। ऐसे आप पदार्थोंसे लेते हैं, हड्डी चूसते हो। आप सोचते हो कि यह सुख पदार्थोंसे आ रहा है? यह नहीं आ रहा है। इसमें है ही नहीं रस। आवे कहाँसे? अगर इनमें रस होता तो अच्छे-अच्छे बुद्धिमान् विरक्त त्यागी हुए हैं। वे सफा मूर्ख थे क्या? जो सफा छोड़ दिया परवाह नहीं की। बेसमझ थे सफा?

परमात्मसुखमें स्वतन्त्रता

राजा भर्तृहरि हुए हैं उज्जैनमें। बहुत अच्छे विद्वान् थे। बड़े नीतिज्ञ थे। उन्होंने कई तरहके काम किये हैं। राज्य किया है और भोग भी भोगे हैं। महारानीके साथ रहे तो भाई ही राज करता था। वे तो महलोंमें ही रहते हरदम। ऐसे भोग भोगकर भी देखे हैं। परंतु न रुपयोंके साथ टिके, न राज्यके साथ टिके, न भोगोंके साथ टिके। वैराग्य हुआ तो वहाँसे खसके ही नहीं। गये नहीं कहीं भी। यह सुख मिल जायगा, तब आपको पता लगेगा। स्वतन्त्र सुख है बिलकुल, किसीकी पराधीनता नहीं है। संसारका सुख कभी स्वतन्त्रतासे मिल ही नहीं सकता। मैं जोरसे कहता हूँ। कोई भाई-बहन इसको सिद्ध करना चाहे तो करे। किसी-न-किसीके संगसे सुख मिलेगा। अकेला स्वतन्त्रतासे सुख नहीं ले सकता। परमात्माके सुखमें परतन्त्रता है ही नहीं। ***'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं'*** संसारका सुख बिना पराधीनताके मिलता ही नहीं। कोई सिद्ध करना हो तो करो। पराधीन होनेसे ही सुख मिलेगा। भोगोंसे मिलेगा तो भोगोंके पराधीन होगा। किसी व्यक्तिसे सुख मिलेगा तो व्यक्तिके पराधीन होगा। रुपयोंसे सुख मिलेगा तो रुपयोंके पराधीन। राज्यसे मिले तो राज्यके पराधीन। पदसे मिले तो पदके पराधीन। बिना पराधीनताके संसारका सुख नहीं मिल सकता। परमात्मामें आप चलोगे, इसमें आप लग जाओगे तो स्वतन्त्रतासे मिलने लगेगा।

पहले इसमें भी सत्संग, स्वाध्याय, सत्पुरुष, सत्-शास्त्र आदिके संगसे पता लगेगा। कारण कि संग-ही-संगमें आप रात-दिन रहे हो। इस वास्ते आपको असंगताका पता नहीं है। इस वास्ते संगसे छूटनेके लिये संग करना होगा। सर्वथा असंगता हो जायगी तो किसीकी जरूरत नहीं है।

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

‘**सङ्गो हि बाध्यते लोके**’—बँधता है वह जो संगी होता है। संग यदि छोड़ नहीं सकते तो सन्तोंका संग करो। ‘**सतां सङ्गो हि भेषजम्**’ वह संग छुड़ानेमें औषध है, दवाई है। रोगीको दवाई लेनी पड़ती है। रोग मिट जायगा फिर किसीके संगकी जरूरत नहीं है। ***‘कंचन खान खुली घट माँहीं’*** भीतरसे ही आनन्द आने लगेगा। जिसे शीतज्वर चढ़ता है तो भीतरसे आता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वह भीतरसे निकलता है। बाहरकी रजाइयोंसे बन्द नहीं होता। भीतरसे गर्म-गर्म पानी पिला दिया जाय तो शान्ति मिलेगी। ऐसे भीतरसे आनन्द आने लगता है, भीतरसे।

एक सन्तके पास कोई गया। बाबाजी अकेले ही बैठे हो? अरे भाई, तेरे आनेसे ही अकेला हो गया। इतनी देर तो अकेला नहीं था। संसारकी बात याद आते ही भगवान् छूट जाते हैं। वह संसार मिलकर क्या निहाल करेगा बताओ! संसारकी याद आते ही आफत आ जाती है। संसारका चिन्तन करते ही दुःख आयेगा। संताप आयेगा, जलन होगी, आफत होगी। अभावका अनुभव होगा। यह नहीं है, यह नहीं है, यह नहीं है। नहींका अनुभव होगा आपके। थोड़ा-सा विचार कर आप देखें। आपके पासमें जितनी सामग्री है, मेरे पासमें उसकी अपेक्षा कुछ सामग्री नहीं है। आपके भाई-बन्धु हैं, कुटुम्बी हैं, बेटा है, बेटी है। आपके इतने हैं। मेरे अभाव-ही-अभाव है। न छोरा है, न छोरी है, न रुपया है, न घर है, न कुछ और है, न हमारे पासमें कोई पद है।

अगर आपकी तरह मैं चाहना करूँ तो रात-दिन रोऊँ। मेरी

अपेक्षा तो आप बड़े भारी ठीक हो। एक भाईने कहा था—स्वामीजी, पूँजीवादका नाश कैसे हो? मैंने कहा—पूँजीवादका नाश चाहते हो तो पहले तुम मेरे समान बन जाओ। एक पैसा भी अगर तुम्हारे पास है तो मेरेसे तो तुम पूँजीवाले हो कि नहीं। पूँजीपति हो कि नहीं। लाखों-करोड़ों रुपया पूँजी है तो एक पैसा पूँजी नहीं है क्या? अगर पूँजीवादका नाश चाहते हो तो पूँजीका त्याग करो। नहीं तो पूँजीवादका नाश नहीं चाहते, पूँजीका परिवर्तन चाहते हो कि उनकी पूँजी मेरे पास आ जाय। मुँहमेंसे लार टपकती है धनी आदमियोंको देखकर। पूँजीवादका सिद्धान्त कहाँ सोचते हो?

इनके पास धन है वह मेरे पास आ जाय। नीयत खोटी है तुम्हारी। अगर पूँजीवाद खराब है तो पैसा छोड़ दो। पूँजी हम नहीं लेंगे। हम तो पूँजीवाद खराब समझते हैं, ऐसा कहना नीयत खोटी दिखती है। पदार्थोंके मिलनेसे सुख होवे तो आपको बहुत बड़ा भारी सुख मिलना चाहिये और बड़ा भारी दुःख मेरेको होना चाहिये; क्योंकि पदार्थोंका अभाव है। बहुत-सी चीजें नहीं हैं मेरे पास।

सर्वत्र परमात्मसुख

भाई! पदार्थोंके अभावसे जो सुख होता है वह सुख परमात्माका है। भोगनेसे जो सुख होता है वह परमात्माका है। परमात्माके बिना सुख है ही नहीं। संसारसे विमुख होनेसे ही सुख होता है। संसारसे संसारका सुख नहीं होता, पर थोड़ी-सी बारीक बात है। किसी भोगको भोगो। उससे अलग होओगे तब सुख होगा। अलग होते ही सुख होता है। भोजनका सुख भी कब होगा? भोजनकी भूख जोरदार लगी है उसके मिलनेसे सुख होता है तो एक-एक ग्रास लेनेसे भूख मिटती जाती

है और सुख चला जाता है। सुख तो अभावके अनुभवमें हुआ। उसे भोजनमें सुख कहाँ है? भोजन कर लिया, अब तृप्ति हो गयी। अब नहीं चाहिये बस। अब दुःख मिट गया। दुःख मिट नहीं गया है। खा नहीं सकते। थक गये हो। खानेकी ताकत मिट गयी आपकी। किसी भोगको भोगते-भोगते थक गये, उस थकावटको कहते हो सुख मिल गया।

'आयो चौरासी भुगत कर, फिर जावण ने त्यार'॥

संसारके भोगसे थकावट होती है उसको आप सुख कहते हो। भोगनेकी शक्ति नष्ट हो गयी अब सुखी हो गये साहब! फिर शक्ति आ गयी। फिर दुःखी हो गये। जब सुखी हो गये फिर दुबारा क्यों जाओ वहाँ। परमात्मामें सच्चे हृदयसे लगनेवाले फिर लौटकर नहीं जाते। भर्तृहरि फिर नहीं गये। जिस दिन वैराग्य हुआ और लग गये तो फिर लग ही गये। भर्तृहरिकी दो तरहसे मैंने कथा सुनी है। एक तो अमर फल 'स्त्रीको दिया' और एक दूसरी कथा और सुनी है। कहाँतक सच्ची है भगवान् जानें। सुनी हुई जरूर है।

राजा भर्तृहरिकी कथा

राजाकी अपनी रानीमें बहुत आसक्ति थी। बहुत ही ज्यादा पड़े रहते रनिवासमें। इतनी ज्यादा आसक्ति थी। वह मर गयी। उसके मरनेपर बड़ा भारी दुःख हुआ। उसको जलानेके लिये गये तो मैं तो आप साथ ही जलूँगा। सती होती है ऐसे मैं 'सता' होऊँगा। ऐसी स्त्री मर गयी, मैं साथमें मरूँगा। बड़े-बड़े एहलकार, मन्त्री आदि समझाते हैं। नहीं साहब! ऐसी स्त्री चली गयी। मैं उसके बिना जी नहीं सकता। साथ ही होम कर दूँगा अपनेको। इतनेमें गोरखनाथजी आ गये। लोगोंने कहा सन्त आ रहे हैं। तो कहा—थोड़ा ठहरो बाबा, वे हाँडी हाथमें

लिये आ रहे थे। थोड़े पासमें आये कि हाँडी हाथसे छूट गयी, हाँडी फूट गयी और अब लगे रोने जोर-जोरसे। हाय मेरी हाँडी, हाय मेरी हाँडी, रोएँ जोर-जोरसे। राजाने पूछा क्या बात है? तो कहा—एक साधु दुःखी हो रहा है। तो भर्तृहरिने कहा—ठहरो भाई। अभी तो मैं जीता हूँ। मेरे राज्यमें साधु, गौ, ब्राह्मण दुःखी हों, यह मैं नहीं सह सकता। मैं जाऊँगा। जाकरके पूछा बाबाजी! क्या हुआ? वे लगे जोर-जोरसे रोने। हाय, हँडिया! हाय, हँडिया! बाबाजी क्या हो गया? क्या-क्या हो गया? दीखता नहीं, अन्धा है तूँ? मेरी हाँडी फूट गयी। ऐसी क्या हाँडी थी। तुम क्या हाँडी समझते हो? कैसी क्या थी? तुम्हारेको होश नहीं। तुम समझते नहीं। हमारे तो सर्वस्व हाँडी ही थी। वह आज फूट गयी बस। अब क्या करूँ? और रोएँ जोर-जोरसे।

क्या हुआ महाराज? देखो। हमारे रसोईघर भी यही था, पहिडा पानीका भी यही था। इसमें ही रोटी खाता था। इसमें ही पानी भर लेता था। इसीसे शौच जाया करता। इसीसे स्नान कर लेता था। अब स्नानघर गया, हमारा रसोईघर गया, हमारा जलपात्र गया, हमारा भोजनपात्र गया। कितना नुकसान हो गया। बहुत बड़ा नुकसान हो गया। हाँडी फूट गयी। वर्षा आती तो कपड़ा इसमें रख देता, उलटी कर देता। सब सूखा-का-सूखा रह जाता। वर्षा बन्द होते ही पहन लेता। हमारा घर-का-घर नष्ट हो गया। अब बताओ, काहेमें रहूँगा मैं। कोई पुस्तक है, कपड़ा है भींग जायगा। इसीको सिरहाना देकर सो जाता खूब मौजसे। अब वह सिरहाना कहाँसे लाऊँ? ऐसे कहने लगे। मेरा तो सब कुछ चला गया। घर-बार-मकान, ओढ़ना, बिछौना, सब-का-सब खत्म हो गया, सर्वस्व नष्ट हो गया।

राजाने कहा—आप रोते क्यों हैं? हाँडी दूसरी मिल जायगी। दूसरी नहीं, मेरी बढ़िया हाँडी फूट गयी। उमरभरकी साथी बढ़िया हाँडी फूट गयी। महाराज! दूजी हाँडी मिल जायगी, यों रोते क्यों हो? तो तू रानीके लिये रोता है। क्या और सब रानियाँ बाँझ हो गयीं? अब दूसरी मिलेगी नहीं क्या? मैं तो रोनेसे काम चलाता हूँ। तूँ तो जलनेको तैयार है। मेरी हाँडी फूट गयी ऐसे ही तेरी एक हाँडी फूट गयी। तो फिर रोवे क्यों बता? तेरे मकान तैयार, तेरे कपड़ा तैयार, तेरे रसोईघर तैयार, तेरे स्नानघर तैयार, तेरे सब चीज तैयार है। मेरा तो सर्वस्व नष्ट हो गया। तेरे तो एक लुगाई मर गयी। मेरेको समझाता है। राजाको अकल आ गयी कि बात तो ठीक है।

अब राजाने कहा—'अब नहीं रोएँगे बस, अब न सता होवेंगे। तुमलोग जाओ, तुम्हारा राज्य करो! अब महाराज। मैं तो आपके साथ रहूँगा। चलो, अपने यहाँ बड़ा दरबार है; क्योंकि माँगेंगे और खायेंगे। कौन-सा बड़ा खर्चा लगता है। बिलकुल आजादी है ठीक तरहसे। रोटी मिलती है, कपड़ा मिलता है, सब मिलता है। राजा फिर साधु हो गये और चल दिये।

भर्तृहरि कहते हैं—रात्रिको आग सुलगती है। घासपर रहनेवाले जन्तु स्वाहा हो जाते हैं, पता नहीं है उन्हें कि हम जल जायँगे, मर जायँगे। इस वास्ते वे आगमें पड़ जाते हैं। मछलीको पकड़ते हैं तो काँटेमें मांसका टुकड़ा डालकर पकड़ लेते हैं। वह काँटेको निगल जाती है। काँटा अड़ जाता है तो वह मर जाती है। मछलीको ज्ञान नहीं है कि इसको खानेसे मर जाऊँगी। ये कीट-पतंग, मछली, जानवर बेचारे अनजानेपनसे मर जाते हैं। आप जो जितने सुख भोगते हो, उसमें कितना दुःख होता है, कितना सन्ताप होता है, कितनी जलन होती है, कितनोंसे छिपाव करना पड़ता

है, कितना झूठ, कपट, बेईमानी करनी पड़ती है और कितनी-कितनी आफत भोगनी पड़ती है? जगह-जगह मामूली आदमी, जिनसे बात नहीं करनी पड़े, ऐसे आदमियोंकी गुलामी करनी पड़ती है आपको रुपयोंके लिये। जिनका मुंडा देखनेसे पाप लगे, ऐसे आदमियोंकी गुलामी करनी पड़ती है। बोलो, गुलामी करनी पड़ती है कि नहीं रुपया कमानेमें?

ऐसे दुःखोंको देखते हुए भी हमलोग जानकार हैं अच्छी तरहसे। अहो ! मोहकी बड़ी भारी महिमा है जो मूढ़ताके बीच इतने फँसे हुए हैं कि कभी होश नहीं आता है। दुःखोंके महान् घर। '**दुःखालयमशाश्वतम्**'—संसारको दुःखालय कहा है। औषधालय, पुस्तकालय, वस्त्रालय होता है ऐसे दुःखालय है। वह मोहके कारणसे छूटती नहीं। दुःख पा रहे हैं फिर जा रहे हैं। मिर्ची खाते हैं, आँखमें, नाकमें पानी पड़ता है, सिसकारे करते हैं फिर भी खा लेते हैं। अब क्या वहम रह गया बाकी? अब छुड़ाओ कोई मिर्ची खानेवालेको। छोड़ नहीं सकता, पसीना आ जाता है शरीरका। अब बोलो कैसे समझावें? '**विजानन्तोऽप्येते विपज्जालजटिलान्**' भोगमें महान् विपत्ति-ही-विपत्ति भरी हुई है। ऐसेको भी छोड़ते नहीं।

सुख केवल भगवान्‌की ओर

गधेकी दशा है भाई! लगे दुलत्ती, फिर भी उधर ही चले। तिरस्कार, अपमान, दुःख-संताप तरह-तरहसे सहते हो। फिर भी थोड़ा लोभ, कुछ-कुछ मिल जायगा। मिल जायगा माजना। क्या मिल जायगा? आनन्द-ही-आनन्द भगवान्‌की तरफ चलो तो। गृहस्थमें बैठे हुए भी आप भगवान्‌की सेवा करो, कुटुम्ब भगवान्‌का है, सब भगवान्‌के हैं। ऐसे सेवा करो तो निहाल हो जाओगे। वही कुटुम्ब वही आप। वही घर आपका। केवल

भाव बदल दो कि भगवान्‌का घर है। वे भगवान्‌के जन हैं। भगवान्‌की आज्ञासे सेवा करनी है। कोई मर गया तो मर गया। सेवा करनी है उसकी। घरमें बैठे मौज हो जायगी। मौज कब होगी? जब आपके हृदयकी गुलामी मिट जायगी, लालसा मिट जायगी। हृदयमें गुलामी रहे, भोगोंकी, पदार्थोंकी, रुपयोंकी तो कभी सुख नहीं मिलेगा। साधु बाबा बन जाओ भले ही। वहीं बैठे-बैठे रोओगे कि रुपया नहीं मिला, आदर नहीं मिला। यह जबतक गुलामी रहेगी तो साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो, चाहे अपढ़ हो। कोई फर्क नहीं है। जब हृदयसे निकल जाय यह तृष्णा फिर मौज ही है। आनन्द-ही-आनन्द है। इसके त्यागनेमें आप स्वतन्त्र हो, परतन्त्र नहीं हो। संग्रहमें तो परतन्त्र हो पर हृदयसे मोह छोड़नेमें आप पराधीन नहीं हो। आप अपात्र नहीं हो। आप अयोग्य नहीं हो। आप साक्षात् परमात्माके अंश हो। नित्य-निरन्तर रहनेवाले आपने नित्य-निरन्तर वियुक्त होनेवालेकी गुलामी स्वीकार की। बताओ, इसमें झूठ है क्या? नित्य-निरन्तर वियोग हो रहा है आपके साथ शरीरका, पदार्थोंका, कुटुम्बियोंका, घरका आप नित्य-निरन्तर रहनेवाले हो। आप नष्ट नहीं होनेवाले। ऐसे नष्ट नहीं होनेवाले। उनके गुलाम बन गये। शर्म नहीं आती। अक्ल नहीं आती क्या? कुछ सोचते नहीं।

नित्य आप रहनेवाले अनित्यके गुलाम हो गये। अनित्य वस्तुओंका उपयोग करो। धन कमाओ, अच्छे काममें लगाओ। उत्साहसे, प्रसन्नतासे पर मोह मत करो। रुपयोंको भी सँभाल कर रखो। हिसाब करो पैसे-पैसेका, पाई-पाईका। पर हृदयमें महत्त्व नहीं देंगे। सब-का-सब चला जाय तो मौज, सब रह जाय तो मौज। कुटुम्बी रहे तो मौज। सब-के-सब चले जायँ

तो मौज। अपनी मौज उनके अधीन नहीं है। ऐसी मौज आपको मिल जायगी। थोड़ा-सा त्याग करो भीतरसे। बाहरसे भले ही गृहस्थ बने रहो, जहाँ हो वहीं बने रहो। भीतरसे बेपरवाह करो। देखो, आनन्द मिलता है कि नहीं। संसार आपकी गरज करेगा। आप गरज करोगे तो संसार ठुकरायेगा, तिरस्कार करेगा, अपमान करेगा। आपके हृदयसे वैराग्य हो फिर आपका कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। अपमान कोई नहीं कर सकता। आप ही अपमान करवाते हो बुलावा देकर। क्यों अपनी बेइज्जती करवाओ भगवान्के अंश होकर। इस वास्ते सुख तो केवल परमात्मामें है।

ना सुख काजी पंडितां, ना सुख भूप भयां।
सुख सहजां ही आवसी, तृष्णा रोग गयां॥
न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तशालिनः॥

देवराज इन्द्रको वह सुख नहीं। चक्रवर्तीको वह सुख नहीं। धनी आदमीको वह सुख नहीं है जो सुख राग मिट जाय, भीतरसे गुलामी मिट जाय। संग्रह और भोग ये दो मिट जायँ। भोग भोगनेकी और संख्या बढ़ानेकी धुनमें लगे हैं। धन बढ़ा लें। धन इकट्ठा कर लें। धनी हो जायँ। यह भावना मिट जाय। इकट्ठा रखो। धन आप लाखों रुपया रखो पर गुलामी मत रखो। भैया, गुलामी मत रखो। मालिक बनकर रहो धनके। मालिक बननेका अर्थ क्या है? सब-का-सब धन चला जाय तो हमारे क्या चला गया। गुलामी होगी तो लाखों रुपये जमा हैं और एक लाख खर्च हो जाय तो मनमें खनखनाहट होती है कि मूलधन खर्च हो गया। मूलधनका क्या करोगे? मूलधन खर्च नहीं होना चाहिये। अरे छोरा! अक्ल नहीं है मूलधन

खर्च करते हो। मूल किस वास्ते है साहब! खर्च तो कर नहीं सकते। जैसे कोई कर्जा सिरपर आ जाय उसका दुःख होता है। ऐसे मूलधन खर्च होनेका दुःख होता है। मूलधन खर्च नहीं करना। कमाओ-खाओ, पर पूँजी बढ़ाओ कुछ तो। वर्षमें पाँच, दस, हजार पूँजी पैदा होनी ही चाहिये।

यह दशा रहेगी नहीं। इसमें शर्म आनी चाहिये। आ जाय तो लाखों, करोड़ों आ जाय और चला जाय तो चला जाय। कहते तो यह हैं कि '***रुपयों तो हाथ रो मेल है।***' पर मैल है कि कालजे री कोर है। अब आ गया तो क्या? चला गया तो क्या? नफा हो गया तो क्या? नुकसान हो गया तो क्या? अपने काम करो। नफा-नुकसानको समझो, व्यापारमें उद्योग करो, नौकरी करो, जो कुछ करो आप उत्साहपूर्वक करो। पर गुलामी क्यों रखो? बहुत आनन्द होगा। बड़ी मस्ती होगी, बड़ा सुख होगा।

रुपयोंकी गुलामीके कारणसे मनुष्योंका तिरस्कार हो रहा है। मैंने कहा—भाई! रुपये तो काम आते हैं वस्तुओंके द्वारा। स्वयं काम नहीं आते। अन्न, जल, वस्त्र, मकान स्वयं काम आते हैं। रुपये स्वयं काम नहीं आते। रुपयोंसे बढ़कर वस्तुएँ हैं, वस्तुओंसे बढ़कर व्यक्ति। आज दहेजप्रथा इतनी बढ़ गयी कि रुपया दो तो कन्याका सम्बन्ध हो। कन्याका तो तिरस्कार और रुपयोंका सत्कार? रुपयोंको तो बड़ा समझते हैं। कन्या बैठी है घरपर, उसको लेते नहीं हैं। रुपया लेंगे।

यहाँतक मैंने सुना है, अखबारमें भी आया है—दहेज कम आया इस कारण उस छोरीको मार दिया। यह मर जाय तो दूसरा ब्याह करेंगे जिससे दहेज अधिक आयेगा। कितनी रुपयोंकी गुलामी हो गयी। तिरस्कार करते हैं उस बहूका जिसके

दहेज कम आया है। देवराणी, जेठानी, सास, ननद सब उसे तंग करते हैं। तुम्हारे बापने दिया क्या? घर-का-घर बिक जाय तो भले ही बिक जाय, पर हमें तो रुपया दो। इतनी गुलामी तुम्हारे भीतर, इस प्रथाको शुद्ध करो भाई! कन्या देखो, जिससे सदा उमरभर काम है। रुपया तो आते-जाते रहते हैं। रुपयाके लिये इतना तिरस्कार। इतना अपमान नारी-जातिका। बातोंमें कह दिया कि नारी-जातिका तिरस्कार नहीं होना चाहिये, आदर होना चाहिये। विधवा ब्याह करो साहब! अब कुँवारीको तो वर मिला ही नहीं, विधवा वर रोक लेगी तो क्या दशा होगी।

अरे भाई! अक्लसे काम लो। यों समाजका सुधार होता है क्या? शूर-वीरतासे करना चाहिये कि कुंकुम कन्या हमें तो लेना है क्योंकि लड़का है हमारे। ब्याह करना है, इस वास्ते कन्यादान लेना है। दान भैया! रुपया-पैसाका दान भी खराब जिसमें कन्याका दान बड़ा पाप है परंतु करें क्या? लड़का ब्याहना है इसलिये कन्यादान लेना पड़ता है। हमारेको कन्या भगवान् देंगे तो हम भी कन्यादान करेंगे। ऐसे करो तो समाज कुछ ठीक हो, पर रुपयोंकी गुलामीसे ऐसा नहीं होगा।

मनुष्य हो, भगवान्‌के अंश हो। रुपया आने-जानेवाली चीज है। कृपा करो।

भगवन्नाम लेते जाओ। असली धन है।

कबिरा सब जग निरधना धनवन्ता नहीं कोय।
धनवन्ता सोई जाणिये जाके रामनाम धन होय॥

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

(दिनांक १७ अगस्त, १९८२)

प्रवचन—७

श्रेष्ठ साधन—शरणागति

सज्जनो! जितने साधन हैं उन साधनोंमें सबसे सरल व श्रेष्ठ भगवान्‌के चरणोंकी शरणागति है। सुगम भी है व श्रेष्ठ भी है। परंतु अपने मनमें जब बलका, विद्याका, बुद्धिका, वर्णका, आश्रमका, चतुराईका, कुलका कुछ अभिमान भीतर होता है तो उस पुरुषके द्वारा शरणागति कठिन होती है। क्योंकि अपनेमें कुछ भी अभिमान है वह बाधक होता है, शरण होने नहीं देता। अधिक अभिमानके कारण बाधा लगती है। वह अभिमान अगर न रहे, साथ-साथ अपने कल्याणकी इच्छा पैदा हो जाय कि मेरा उद्धार कैसे हो? मेरा कल्याण कैसे हो? मेरा सदाके लिये दुःख कैसे मिट जाय? महान् आनन्दकी प्राप्ति कैसे हो जाय? ये एक जोरदार लालसा जाग्रत् हो जाय तो शरणागति बहुत सरल है।

जैसे मनुष्य सोता है तो नींद लेनेके लिये परिश्रम करना नहीं पड़ता। ऐसे नहीं कि इतनी तकलीफ देखनी पड़ेगी, ऐसा धन्धा किया जायगा, ऐसे परिश्रम करने पड़ेंगे तब नींद आयेगी। नींद तो कुछ न करनेसे आप-से-आप आ जाती है। वह तो मूढ़ता है, मोह है। भगवान्‌के चरणोंके शरण होकर कुछ अभिमान न रखे और कल्याण चाहता है उसके शरणागति स्वतः हो जाती है।

अपना कल्याण चाहता है और अपनेमें ऐसा बल नहीं दिखता, ऐसी योग्यता नहीं दिखती, ऐसा साधन नहीं दिखता कि जिससे मैं अपना उद्धार कर लूँ। ऐसी अवस्थामें हे नाथ!

हे प्रभु! मैं आपके चरणोंके शरण हूँ। सज्जनो! ऐसा होनेपर लोक और परलोक सब तरहका भार भगवान् स्वयं अपनेपर ले लेते हैं। भार तो भगवान्‌पर है ही। अपना अभिमान और पुरुषार्थ करते हुए भी होगा तो वही जो भगवान् करेंगे, पर बोझा हमारे सिरपर रहता है।

शरणागत हो जाते हैं तो हमारा भार उतर जाता है। भाइयो-बहिनो, ध्यान दो। हम जो अपनी चिन्ता करते हैं कि कैसे काम चलेगा। यह बिलकुल फालतू, निरर्थक, मूर्खताभरा विचार है। काम तो चलानेवाला वे ही हैं। करनेवाला कुछ और ही है वह विलक्षण है। उसके ऊपर भार है। अपनी चिन्ता छोड़ दे। अर्जुनके कुछ चिन्ता रही। **'न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह'** (गीता २। ९) ये सातवें श्लोकमें शरण होते हैं। नवें श्लोकमें कहते हैं—मैं युद्ध नहीं करूँगा। तब भगवान् हँसते हुए उपदेश आरम्भ करते हैं। भगवान्‌की अत्यधिक दयालुता है।

नहीं तो वहाँ अठारहवें अध्यायके ६३वें श्लोकमें कहते हैं— **'यथेच्छसि तथा कुरु'** वह बात यहीं कह सकते थे—युद्ध नहीं करेगा तो तेरी मर्जी। **'यथेच्छसि तथा कुरु'**—तेरे चाहे जैसे कर। परंतु भगवान्‌को एक विशेष दया आती है। जीवोंपर अत्यधिक दयालुता है। वे कहते हैं किसी तरहसे यह जीव अपना कल्याण कर ले, अपना उद्धार कर ले। सज्जनो! आपलोगोंके सामने जो कई-कई तरहकी घटना आती है, उसका अर्थ यही होता है कि भगवान् अपनी तरफ खींचते हैं। आप बड़ा-बड़ा सहारा लेते हैं—धन-सम्पत्ति-वैभवका, पुत्र-परिवारका, बल-विद्या-योग्यताका, राज्य आदिका तो भगवान् उसको हटा देते हैं। किसीका भी आज दिनतक लौकिक बल भगवान्‌ने

रहने नहीं दिया और रहने देंगे नहीं। आप रुपयोंपर चाहे जितना भरोसा कर लें, विश्वास कर लें। कितना ही झूठ-कपट-बेईमानी कर लें ये रुपयोंका सहारा रहेगा नहीं।

भगवान्‌पर जिम्मेवारी

समझदार आदमी क्यों पापोंमें फँसे? भगवान्‌के शरण होनेपर किसी बातकी कमी रहेगी नहीं। सज्जनो! लक्ष्मी माता पतिव्रता हैं। प्रभुके चरणोंके दास बन जाओगे तो ये मैया बड़े प्यारसे, स्नेहसे अपने गोदमें लेकर, हृदय लगाकर दूध पिलावेगी। बहुत कृपा करेगी। आपके कमी नहीं रहने देगी। बालककी कमी माँके हृदयमें खटकती है। बालक जानता ही नहीं। शीतकाल आनेवाला है ऐसा समझके माँ पहलेसे गर्म कपड़ा बनाती है। वह खेलमें जाता है खड़ा करके नाप लेती है। वह समझता है क्यों तंग करती है। हम खेलें खूब। माँ देखती है अभी ठण्डी आ गयी। जैसे उसको खयाल रहता है उससे बहुत अधिक जीवमात्रका भगवान्‌को खयाल है। वह चाहे सदाचारी है, चाहे दुराचारी है, स्वर्गमें है, चाहे नरकमें, चौरासी लाख योनिमें है या कहीं भी है परंतु भगवान्‌का अंश है। जीव विमुख हुआ है, भूला है। भगवान् विमुख नहीं हुए हैं, भूले नहीं हैं। सज्जनो! थोड़ी कृपा करो।

हे नाथ! हे नाथ! ऐसे पुकार करके प्रभुके चरणोंके शरण हो जाओ। भगवान्‌की आज्ञासे रात और दिन काम करो, परंतु चिन्ता मत करो। चिन्ता भगवान्‌पर धर दो। उसकी आज्ञा-पालन करना—तत्परतासे उसकी शरण रहना। उसकी हाँ-में-हाँ मिलाना। आज्ञा पालनमें बड़े तत्पर रहना। सब प्रभुकी सम्पत्ति समझ करके सुचारुरूपसे सुरक्षित रखना। सज्जनो! पाप नहीं करना, चिन्ता नहीं करनी। क्यों करें पाप? क्यों करें चिन्ता? जब भगवान्-जैसे हमारे मालिक हैं।

मन तूँ क्यूँ पछतावै रे,
सिर पर श्री गोपाल बेड़ा पार लगावै रे॥

भगवान् हमारे मालिक हैं तू क्यों चिन्ता करता है। क्यों घबराता है। क्यों पश्चात्ताप करता है। ***चिन्ता दीनदयाल को मो मन सदा आनन्द।*** चिन्ता-फिकर सब भगवान्‌के चरणोंमें रख दो सज्जनो! आप निश्चिन्त हो जाओ। प्रभु-आज्ञा-पालनमें तत्परतासे लगे रहो। जिस वर्णमें, जिस आश्रममें जहाँ आप हैं—चाहे भाई हो, चाहे बहिन हो वहाँका काम बड़े उत्साहसे सुचारुरूपसे करे परंतु चिन्ता हम क्यों करें? कैसी बढ़िया, बात है?

काम-धन्धा बड़ा सुन्दर होगा। चिन्ता करते काम करता है वह काम बढ़िया नहीं होता है। '**बुद्धिः शोके नश्यति**' शोकसे बुद्धि नष्ट हो जाती है। प्रभुके चरणोंका आश्रय लेनेसे बुद्धि विकसित होती है। भगवान् कहते हैं स्वयं '**तेषां सततयुक्तानाम्**' जो नित्य-निरन्तर मेरेमें लगे हुए हैं। प्रेमपूर्वक लगे हुए हैं। '**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्**'। प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, निरन्तर मेरेमें लगे हैं। '**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते**' (गीता १०। १०)। वह बुद्धियोग दूँगा जिससे वे मेरेको प्राप्त हो जायँ।

चिन्ता करके आप बुद्धि पैदा करोगे झूठ, कपट, बेईमानी, ठगी, धोखेबाजी, ऐसी बुद्धि करोगे जिससे नरक और चौरासी लाख योनि जाना पड़े। ये अपनी चिन्तासे होता है। भगवान्‌के शरण होनेसे भगवान् वह बुद्धियोग देंगे जिससे बेड़ा पार हो जाय। '**तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥**' (गीता १०। ११) उनके ऊपर मैं कृपा करता हूँ। उनके अन्तःकरणमें रहनेवाला अज्ञान संमोह है उस अन्धकारको मैं देदीप्यमान दीपकके ज्ञानद्वारा दूर कर देता हूँ।

भगवान् अन्धकार दूर करे और बुद्धियोग दे कितनी विलक्षण बुद्धि होगी। कितना विलक्षण प्रकाश मिलेगा। लोक और परलोक दोनोंमें करनेके लिये आपको बड़ा भारी प्रकाश मिलेगा। सब तरहका काम करनेके लिये आपको प्रकाश मिलेगा। मैंने कहा है—गीताका विचार करके ठीक तरहसे अनुभव करने लग जाय, उसके अनुसार चलने लग जाय तो जिन कामोंका गीतामें वर्णन नहीं है, ऐसे कामोंमें भी आपकी बुद्धि तेज हो जायगी। आपको याद होगा मैंने कहा—ब्याह-शादी करोगे तो उसमें क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये? आपकी बुद्धिमें विकास होगा। व्यापार आदि करोगे तो उसमें बुद्धिका विकास होगा। पापोंसे तो बच जाओगे और उन कामोंसे ही आपको पुण्य मिल जायगा। जीविकाके कर्म हैं वे भगवद्भक्तिमें भर्ती हो जायँगे।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमात्मासे संसार व्याप्त है, जिससे संसार पैदा हुआ है। जिससे सुरक्षित है संसार। '**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य**' अपने कर्मोंसे उस परमात्माका पूजन करें। आज चिन्ता होती है कि लोगोंका निर्वाह कैसे होगा? आश्रितोंका पालन कैसे होगा? अर्जुनके भी चिन्ता थी कि युद्ध करेंगे और वे मर जायँगे, पीछे स्त्री-बच्चोंकी क्या दशा होगी? अधर्म आकर दबा लेगा तो फिर बहुत ही अनर्थ हो जायगा। अनर्थकी परम्परा लग जायगी। ये अर्जुनने बतायी है। अर्जुनकी चिन्ता होनेके कारण।

जब भगवान्‌ने कह दिया तू एक मेरी शरण आ जा, चिन्ता मत कर। फिर चिन्ता नहीं की। 'भार' हृदयपर भार होता है

वह भार 'भार' है। काम करना 'भार' नहीं होता। व्यवहारका, परमार्थका काम उत्साहसे करता है। अर्जुनने भी शरण होनेपर युद्ध किया है बड़े सुचारुरूपसे, साङ्गोपाङ्ग ठीक रीतिसे। युद्धमें अगर चूक जाय तो गला कट जाय। भगवान्‌के आश्रित होकर युद्ध किया तो भगवान्‌ने बचाया।

कर्णकी कथा

कर्णके पास एक शक्ति थी वीरघातिनी। बात क्या थी? कर्ण जब जन्मा है तो जन्मके समय ही उसके शरीरके ऊपर एक कवच था। चमड़ीकी तरह ही चमड़ी दिखे परंतु कोई शस्त्र-अस्त्र भेदन न कर सके। ऐसा स्वाभाविक कवच था। जन्मके समय कानोंमें कुण्डल थे। उनका बड़ा प्रभाव पड़ता था। माता कुन्तीने एक बक्सेमें बन्द करके खूब अच्छी तरह सुरक्षित करके नदीमें बहा दिया। हस्तिनापुरमें यमुनाजीकी धारा गयी। अधीरथ नामका एक सूत था, उसको वह बक्सा मिला, खोला तो उसमें छोटा-सा सुन्दर बालक। अपनी स्त्रीको लाकर दे दिया कि भगवान्‌ने तेरेको बेटा दे दिया। राधा नाम था उसका। उसने खूब पालन-पोषण किया। कर्ण सूर्यभगवान्‌की उपासनामें लग गया। सूर्यको वह इष्टदेव समझता था। सूर्य तो समझते थे मेरा पुत्र है, परंतु ये समझते थे इष्टदेव।

इसके पास विलक्षण शक्ति थी। इन्द्रको इसका डर था। इन्द्रका पुत्र अर्जुन है। सूर्यका पुत्र कर्ण है। एक दिन उसने कर्णसे वह कवच माँग लिया, कुण्डल माँग लिये। कर्ण दानी था। उसके लिये लोगोंमें ये कहावत है। सुबहके समय कोई आता है तो कहते हैं भाई! कर्णका वक्त है। दान देता भजन-स्मरण किया करता। उसका वक्त दिया हुआ था, समय दिया हुआ था। जब दान दिया करता तो कोई कुछ भी माँग ले

तो न नहीं कहता था। कर्णके मरनेपर भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा—आज इस भू-मण्डलसे एक विशेष दानी चला गया। उसके जोड़ीका दान देनेवाला नहीं है। इन्द्रने जब माँग लिया उनसे कवच तो वह चमड़ी उतारकर दे दी।

श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये कोई अदेय वस्तु नहीं है। त्वचा उतार-कर दे दी। कुण्डल दे दिये कर्णने। उससे उसकी रक्षामें बाधा पड़ी। मर गया, नहीं तो मरता नहीं उनसे। वैरीसे, किसीसे ही नहीं मरता। ऐसे वह कर्ण बड़ा धर्मात्मा-पुण्यात्मा था। पाण्डवोंके साथ इसका विरोध हो गया था—द्वेष हो गया था, जिसमें भी अर्जुनके साथ। इन्द्रने प्रसन्न होकर कर्णको एक ऐसी शक्ति दी कि वह जिसपर भी छोड़ दे तो जिन्दा नहीं बच सकता। वह शक्ति कर्णने अर्जुनको मारनेके लिये सुरक्षित रख रखी थी।

एक दिन माता कुन्तीने कर्णसे एकान्तमें कहा। देख कर्ण! तू मेरा बेटा है। मैं तेरेसे माँगती हूँ। कर्ण बिगड़ा, तू माँ कैसी? जो माँ अपने बच्चेको नदीमें बहा दे, वह माँ है? ये कोई माँका काम होता है, परन्तु आप माँ हो तो माँगो क्या माँगती हो। क्या माँगना चाहती हो, बोलो? बेटा! तेरेसे पाँच बेटा चाहती हूँ। इन पाण्डवोंको मारना नहीं। कर्णने कह दिया कि माताजी! आपने पाँच बेटा माँगे, तो मैंने पाँच बेटा दिये। युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेवको तो मारूँगा नहीं। अर्जुनके साथ मेरा है वैर। अर्जुन अगर मेरेको मार दे तो आपके पाँच बेटे। मैं अर्जुनको मार दूँ तो मैं बेटा तुम्हारा। तुम्हारे पाँच बेटे तैयार। मैं तुम्हारे पक्षमें आ जाऊँगा। एक बातकी याद रखना। ये बात युधिष्ठिर महाराजसे मत कहना। अगर कह दोगी तो ये पाण्डव सदा दुःखी रहेंगे। ध्यान देना

भाइयो! कर्णके मनमें कितना विलक्षण विचार है ? मैं मर जाऊँ बेशक दूसरोंको दु:ख न हो। पाण्डवोंको कष्ट न हो। ऐसे ही कृष्णभगवान्‌से कहा। कृष्णभगवान्‌ने कहा तू कुन्तीका बेटा है। इसने कहा आप युधिष्ठिरको मत कहना। युधिष्ठिरसे कह दोगे तो मेरे साथ युद्ध नहीं करेंगे। दुर्योधनके साथ करेंगे। दुर्योधन मेरेको नहीं छोड़ेगा, मैं दुर्योधनको नहीं छोड़ूँगा। मेरे साथ युद्ध युधिष्ठिर करेंगे नहीं। इसमें पाण्डव दु:ख पावेंगे। इस वास्ते युधिष्ठिरको मत कहना। युधिष्ठिरसे छिपी हुई बात रही। सब युद्ध समाप्त हो जाता है जब युधिष्ठिर महाराज अपने बड़ोंको पानी देने लगे हैं। उस समय माँ कुन्तीने कहा बेटा! कर्णको भी पानी दे। उनको भी जल दो वे तुम्हारे बड़े भाई हैं। युधिष्ठिरको बड़ा दु:ख हुआ।

कहते हैं माँ! आज दिनतक मैं इस बातको जान नहीं सका। मेरे मनमें आती थी। जब कर्णके चरणोंकी तरफ मेरी दृष्टि जाती तो माँ याद आ जाती। कुन्ती माँ याद आती। वे माँके चरणोंमें रोजाना नमस्कार करते। चरणोंके दर्शन रोजाना करते थे। कर्णके चरणोंको देखते ही कुन्ती याद आ जाती थी। मैं इस बातको जान नहीं सका। क्या कारण है? कर्णको देखता हूँ तो माँ याद आती है। आपके व कर्णके चरण मिलते-जुलते थे। इस वास्ते माँकी याद आ जाती थी। मैंने बड़ी गलती की, उस कर्णके साथ मैंने द्वेष रखा। मैंने कर्णको मरवा दिया, आपने ये बात प्रकट नहीं की। ऐसे पश्चात्ताप हुआ है। लोकोंमें एक कहावत है कि युधिष्ठिरने श्राप दे दिया कि स्त्रियोंके मनमें बात खटेगी नहीं। इतनी छिपा ली तैंने। कितना विलक्षण उन लोगोंका भाव। खास धर्मावतार युधिष्ठिरजी कितना भाव विचित्र रखते थे।

असली धन—समयका सदुपयोग

सज्जनो! अपने लिये पाप नहीं करते थे, अन्याय नहीं करते थे, बड़े धर्ममें रहते थे, अपनी मर्यादामें रहते थे। यहाँके लोभमें आकर अगर हम गड़बड़ी कर लेंगे तो गड़बड़ी करनेपर भी यहाँ धन हो जायगा, ये कारण नहीं हैं। बिलकुल ये नहीं हैं। कोल-किरातोंने क्या कहा? दिन और रात पाप करते हैं। ***पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥*** (मानस २। २५१। ५) कटि-पटका तात्पर्य लज्जा-निवारणके लिये तो पूरा कपड़ा नहीं है। पेट भरनेके लिये अन्न नहीं है। रात-दिन पाप करते हैं। पाप करनेवाले सब-के-सब धनी बन जायँ, ये बिलकुल गलती बात है। है नहीं। आप खूब दृष्टि पसारकर देख लें। पाप करो तो धन आनेवाला आ जायगा। पाप नहीं करो तो धन आनेवाला आ जायगा। पाप करते रहो तो धन जानेवाला चला जायगा। पाप न करो तो भी जानेवाला चला जायगा। धनका सम्बन्ध प्रारब्धसे है। अभी की हुई क्रियासे नहीं है।

जिसमें भी पाप-क्रियाका फल धन नहीं है। पाप-क्रियाका फल तो दण्ड है। चाहे नरक भोगो, चाहे चौरासी लाख योनि भोगो। इस वास्ते थोड़ा-सा खयाल रखो। रोगी आदमी थोड़ी-सी जीभ वशमें रखता है तो नीरोग हो जाता है। जिह्वाके वशमें हो कुपथ्य कर लेता है तो रोग बढ़ जाता है। ऐसा थोड़ा-सा धैर्य रख करके संयम करके आप अगर पापोंसे बच जायँ तो बड़ा भारी लाभ होगा। लौकिक लाभ तो होगा वह होना है जितना ही होगा। ***लिख दिया विधाता लेख नहीं टलने का, कछु राई नहीं घटे ना तिल कही बढ़ने का।*** राई-तिलका फरक नहीं पड़ेगा, तो वह आयेगा। अपना काम कर्तव्य करना है।

बड़े उत्साहसे, तत्परतासे, न्याययुक्त काम करना है। ये तो मनुष्यका कर्तव्य है। ऐसे कर्तव्यका पालन नहीं करता वह मनुष्य कहलानेका अधिकारी नहीं है। आलस्य–प्रमादमें, खेल–तमाशोंमें, हँसी–दिल्लगीमें, बीड़ी–सिगरेटमें, ताश–चौपड़में, नाटक–सिनेमामें समय बरबाद कर देता है, बहुत बड़ा भारी नुकसान करता है। असली धन पासमें उम्र है। उसका नाश कर देते हो। सज्जनो! बड़ा टोटा लगता है, बड़ा घाटा लगता है। अभी आपको पता नहीं है।

अपनी चीज नष्ट नहीं होती है, विश्वास मनुष्यके नहीं होता है। सामने देख करके आदमी ललचा जाता है। ये रुपये ले लूँ परन्तु लोभ और पाप आपके साथमें रहते हैं। पैसे भी मरनेपर यहीं रहते हैं। कमाते हैं पैसे वे भी पूरे आप खर्च कर नहीं सकते। अपने कुटुम्बमें भी पूरे खर्च नहीं कर सकते, बचेंगे। आपलोग पैसेवाले हो। हमलोग बिलकुल ऐसे फकीर हैं उनके भी लँगोटी, तुम्बी बचती है मरते हैं तब। ये नहीं पहले सब खत्म हो जाय पीछे मरें ऐसा नहीं। निर्वाहकी चीजें बचती हैं। उसके लिये पाप क्यों करें? साथ ले जानेवाली पूँजीको खराब क्यों करें? काम उत्साहसे करो। बड़ी मुस्तैदीसे करो अच्छी तरहसे। समयको खर्च मत होने दो। समयको बर्बाद मत होने दो। सावधानीसे भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, अच्छी–अच्छी पुस्तकोंका पढ़ना, नाम–जप करना, कीर्तन करना, इसमें लगाओ समयको। ***‘एक–एक श्वास जात लाख–लाख हीरा को’*** सन्तोंने कहा, बड़ा कीमती श्वास है। ये कीमती श्वास हमारे निरर्थक न चले जायँ। संसारका काम–धन्धा उपकारका, सेवाका, घरका करो और भगवान्‌को याद रखो। भरोसा परमात्माका रखो। झूठ–कपटका भरोसा रखते हो। क्या

ये कल्याण कर देंगे? ये उद्धार कर देंगे क्या? सज्जनो! कृपा करो! मनमें आती है कि आपको अपने उद्धारकी बात कौन सुनायेगा? ये सुननेको कब मिलेगी?

केवल भगवान्‌का सहारा

पैसा कमानेकी व झूठ-कपटकी बात तो आपके जो हितैषी कहलाते हैं वे भी सिखा देंगे। वकीललोग भी सिखा देंगे। पैसा देकर सीख लो, बिना पैसा देकर सीख लो, लोगोंको देखकर सीख लो, बड़ी पाठशाला चल रही है। परन्तु पापोंसे बचाकर आपका उद्धार कौन करेगा? भगवान् करेंगे। सिवाय भगवान्‌के और कोई है ही नहीं।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस ४। १२। १)

भगवान्‌के सिवाय भाइयो! बहनो! हमारा सच्चा हितैषी कोई नहीं है। उनके चरणोंके शरण हो जाओ बस। मनमें हे नाथ! मैं आपका हूँ। आप मेरे हैं। ऐसे चरणोंके शरण हो जाओ। **'जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये'**—(गीता ७। २९) प्रभुके चरणोंका आश्रय ले करके यत्न करो। शरण भगवान्‌की रखो भाई! बल, बुद्धि, विद्या, धनका नहीं। ये कच्चा सहारा है। गोस्वामीजी कहते हैं—***'और आस विश्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई।'*** जीवमें अगर जड़ता है, मूर्खता है, भूल है, बड़ी भारी गलती है तो क्या है? आपके सिवा अन्यका जो सहारा है, आश्रय है। ***'और आस विश्वास भरोसो।'*** भगवान्‌के सिवा आशा रखना, विश्वास रखना, भरोसा रखना, ***'ये हरेहु जीव जड़ताई।'*** ये जीव की जड़ता है।

एक आसरो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास॥

भगवान्‌का आश्रय लिया गोस्वामीजी महाराजने, उनकी रामायणसे कितनोंका उद्धार हो रहा है और होगा और हुआ है जिसकी कोई गिनती नहीं कर सकता। उनमें इतनी विलक्षणता कहाँसे आ गयी? सज्जनो! उन चरणोंसे आयी। प्रभुके चरणोंसे। ***'एक आसरो एक बल एक आस विस्वास'*** उसीका ही बल, उसीकी ही आशा, उसीका ही विश्वास है। ***'एक राम घनस्याम हित'*** जैसे चातक होता है बादलकी तरफ देखता है, ऐसे घनश्यामकी तरफ। ऐसे ***'चातक तुलसीदास।'*** घनश्याम हमारे रामजीके चरणोंके शरण हों। उसके लिये मैं चातक हूँ और हमें लेना नहीं है।

सज्जनो! प्रभुके चरणोंके शरण हो जाओ। भगवान्‌ने मात्र जीवोंको शरण ले रखा है। सज्जनो! याद करो। सब जीवोंको भगवान्‌ने शरण ले रखा है। केवल आपकी हाँ-में-हाँ मिलानेकी जरूरत है। भगवान्‌ने तो शरण ले रखा है। कहें क्या पता? इतने भाई-बहिन बैठे हैं? मैं पूछूँ आपसे इतने भाई-बहिन बैठे हैं। कोई एक भी भाई हिम्मत करके बतावे कि मैंने जान करके यहाँ जन्म लिया है। है याद आपको। जन्मकी बात याद नहीं। अभी जैसा आप विचार करते हैं कि सुख मिले व दुःख न मिले, ऐसा विचार भी करते हैं, उद्योग भी करते हैं, परिश्रम भी करते हैं, परंतु फिर भी मिल जाता है क्या? दुःख हम नहीं चाहते तो भी भेज देते हैं। दुःखके भेजते समय भगवान् हमें पूछते ही नहीं, बोलते ही नहीं और भेज देते हैं। क्यों भेज देते हैं? कि भगवान् समझते हैं, मानते हैं कि ये मेरे हैं। भगवान् कहते हैं कि ये मेरे हैं। सोलहवें अध्यायमें आसुरी सम्पत्तिका वर्णन है। वहाँ भी कहते हैं, **'तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्'** ऐसे द्वेष रखनेवाले मनुष्योंमें क्रूर,

अधर्म उनको मैं आसुरीयोनिमें गिराता हूँ। भगवान्‌को पूछे क्यों गिराते हैं महाराज! तू पूछनेवाला कौन? दुष्ट-से-दुष्ट, पापी-से-पापी उनको भी भगवान् अपना समझते हैं। अपनी तरफसे आसुरीयोनिमें गिराते हैं, त्रास देते हैं, शुद्ध बनाते हैं।

जैसे सुनार जब सोनेको अपनाना चाहता है तो वह अग्निमें देकर खूब तपाता है, जलाता है कि जिससे उसकी विजातीय धातु जल जाय। ऐसे भगवान् किये हुए पापोंको दूर करके जलाते हैं, नष्ट करते हैं। बालक खेलता है तो खेलते-खेलते कादा, कीचड़, मैला लगा लेता है, माँ स्नान कराती है। स्नान करते समय रोता है। मौका लगे तो भाग जायगा। माँ हाथ पकड़कर लाती है। जाने नहीं देती। हाथसे रगड़कर मैल उतारती है। उसको साफ करती है। जल डाल देती है ऊपरसे। तो छोरेका श्वास ऊपर चढ़ जाता है। परन्तु इसको दया नहीं आती। अरे भाई! दया ही तो है भरी हुई। वह बालक नहीं समझता है। बच्चा है। ऐसे रगड़ देती है तो बच्चा समझता है अरे! माँ दु:ख क्यों देती है? तैंने मैल क्यों लगा लिया बता? अब कौन-सा धन्धा करने गया था। कौन-सा आवश्यक काम था। जो लगा लिया मैल, ऐसे आप झूठ-कपट करके मैल लगा लेते हो। मैल भगवान्‌को सुहाता नहीं है, ये अपना प्यारा लाला है, बच्चा है, इस वास्ते ज्यों कष्ट देते हैं त्यों चिल्लाता है, टीं-टीं करता है कि भगवान्‌ने दु:ख दे दिया। भगवान्‌के खजानेमें दु:ख है ही नहीं, तू दु:ख कहाँसे लाया। उधार लाया कहाँसे? वे साफ करना चाहते हैं। मैला देखना चाहते नहीं।

काशीजीमें एक विद्यार्थी रहता था। वह पढ़ाई करता था। मामूली खर्चा मिलता था और अपने पढ़ाई चलती थी। माता

उसका प्रबन्ध करती थी। माँ जब बीमार हुई, मरने लगी तब कहा बेटा! तू घबरा मत। कुलदेवी है, शक्ति है, अपनी माँ है। तुम्हारे कोई आफत हो तो ये माँका मन्त्र जपो और माँको याद कर लेना! सदाकी माँ तो बेटा! वह ही है। हम तो नकली हैं उसको याद कर लेना। माँ मर गयी अब वह पढ़ाई करने लगा।

एक जगह ट्यूशन होता था, जहाँ कुछ तनख्वाह मिल जाय। पढ़ानेके लिये जगह खाली थी। कइयोंने दरख्वास्त दी। उसने भी पत्र लिखा कि मेरेको मिल जाय, नहीं मिली। दूसरेकी नियुक्ति हो गयी तो उसके हुआ दुःख। रात्रिमें जपता था माँका मन्त्र। माला फेंक दी और रूठ करके सो गया। मेरी ट्यूशन मिलती थी जिसमें आपने बन्द कर दिया। अब खर्चा कहाँसे लाऊँ और मेरी पढ़ाई कैसे हो। सो गया नींद आ गयी। नींदमें माँ उसको गोदमें लेती है। ऊपर हाथ फेरती है कि बेटा! मैं तेरेको छोटी जगहपर नहीं देखना चाहती। ऐसा कहा नींद खुल गयी। अब मनमें आवे। छोटी-बड़ी जगह तो ठीक, पर खर्चा नहीं। रोटी और पुस्तकोंका भी खर्चा नहीं। कैसे काम चलाऊँ? कैसे पढ़ूँ? अब कहती है छोटी जगह देखना नहीं चाहती। छोटी-मोटी जगह क्या होती है। थोड़े दिनों बाद परीक्षा हुई—परीक्षामें बड़े अच्छे नम्बर आये। जितना ट्यूशन मिलता था उतनी छात्रवृत्ति मिलने लग गयी कि भाई! लड़का बड़ा अच्छा है। इतने रुपये दे दिये जायँ छात्रवृत्तिके। अब पढ़ाई खोटी भी करनी नहीं पड़ी और नौकरी भी करनी नहीं पड़ी। इज्जत भी बढ़ गयी, पैसा भी आ गया।

अब किस तरहसे भगवान् करते हैं तो हम जानते नहीं। उसके कुछ समझमें नहीं आयी बात कि माँ कहती है मैं तेरेको

छोटी जगह देखना नहीं चाहती। क्या करेगी अब? माँ तो सब काम करती है। वह जगन्माता है। भगवान्‌को '**त्वमेव माता च पिता त्वमेव**' ये तो हम अलग-अलग नाम कहते हैं। वही माता है, वही ही पिता है। '**माता धाता पितामह**'। धाय भी वही है। दादा भी वही है। दादी भी वही है। सब कुछ हमारे '**त्वमेव सर्वम्**' भगवान् हैं। ऐसे भगवान्‌के शरण रहो।

भगवान्‌ने शरण ले रखा है, अपना रखा है आपको। सुख-दु:ख भेजते हैं तो कोई सम्पत्ति नहीं लेते। क्यों भेज देते हैं कि अपना मानते हैं। ये मेरे हैं। इतना जब अपनापन भगवान् रखते हैं अपने तो चिन्ता क्यों करें। हमें तो भगवान्‌की आज्ञा पालन करना है। उनकी आज्ञाके अनुसार सुचारुरूपसे काम-धन्धा करना है। चिन्ता नहीं करनी है। अब कैसे करेंगे। वे जानें। बड़ी-बड़ी आफत आयी भक्तोंमें।

पाण्डवोंमें कोई कम आयी है क्या आफत। प्रह्लादजीके ऊपर त्रास कम आयी है क्या? सुनते हैं बावन त्रास दी गयी। इतनेपर भी प्रह्लाद भगवान्‌को याद करता है। ऐसा नहीं कि आफत है तो छोड़ो। इसमें बहुत त्रास आती है छोड़ दो। ऐसा छोड़ा नहीं। वह तो एक भगवान्‌का ही भजन करता है। ऐसे प्रभुके चरणोंके आश्रित रहनेवालोंकी सदा विजय होती है। सदा, परंतु कब होगी? कैसे होगी? कुछ पता नहीं। लोक-परलोकमें भला जरूर है। इसमें सन्देह नहीं। अपने तो भगवान् और सन्तोंकी वाणी पढ़ो। अच्छे-अच्छे महापुरुष हो गये हैं, कह गये हैं उनके वचनोंपर विश्वास करके, उन चरणोंके शरण हो जाओ। फिर कष्ट आयेगा, बेईज्जती होगी तो हमारी क्या होगी—उसकी होगी। द्रौपदीने क्या कहा—'***जाएगी लाज तिहारी नाथ मेरो का बिगड़ेगो, कन्हैया मेरो का बिगड़ेगो,***' मेरा क्या बिगड़ेगा महाराज! '**मौ**

पति पाँच, पाँच के तुम पति, अब पत जाएगी तिहारी' ये पत किसकी जायगी। आप सबके पति—मालिक हो। ***'सूरके स्वामी तुम लाज मरोगे देखोगे द्रुपदा उघाड़ी'*** द्रौपदी उघाड़ी हो गयी, तुम्हारेको शर्म नहीं आयेगी। अरे, जो मालिक होता है उसको शर्म आती है। लौकिक कहावत है कि बहू उघाड़ी फिरे तो ससुरेकी फूट गयी क्या। बड़े हैं, माइत हैं, क्या उनको शर्म नहीं आयेगी। नहीं आवे तो वे निशर्मे हैं, नहीं तो हम निशर्मे ही सही। हमारी क्या शर्म है। हमारी कोई इज्जत अलग है क्या? ऐसे भगवान्‌के चरणोंके शरण रहना बहुत बढ़िया उद्धारका उपाय है। गीताने तो कहा है कि **'मामेकं शरणं व्रज'**। अनन्यभावसे मेरे शरण हो जा, तू चिन्ता मत कर। धर्मका निर्णय न कर सके तो उस धर्मको मेरेपर छोड़ दे। **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८। ६६)।

महाभारत-युद्धकी घटना

तो कर्णके पास शक्ति थी। कुण्डल और कवचकी बात तो कह दी, युद्धके समय घटोत्कचने युद्ध किया। जो भीमसेनका हिडिम्बासे पैदा हुआ राक्षस था। पाण्डवोंके पक्षमें था। रात्रिमें इतना बड़ा भयंकर युद्ध किया कि कौरवोंको चकरा दिया एकदम। निराश हो गये जीनेसे, विजय तो दूर रही। दुर्योधनने कहा कर्ण! इसको मारो किसी तरहसे। उसी शक्तिसे मारो तो कर्णने कहा वह शक्ति मैंने अर्जुनके लिये रख छोड़ी है। कहते हैं रात्रिमें ये घटोत्कच पीस डालेगा पहले ही। फिर पीछे क्या काम आवेगी। कर्णको कहा तो कर्णने शक्ति छोड़ी। वह चमचमाती हुई शक्ति-जैसी। घटोत्कचने अपना शरीर बढ़ाया, आकाशमें था वह। इतना बढ़ाया कि कौरव-सेना सब-की-सब दब जाय। कहते हैं भागो-भागो यहाँसे। वह शक्ति लगी

और गिरा धड़ामसे। एक चौथाई सेना तो दब गयी, मर गयी। ऐसी शक्ति छोड़ी। घटोत्कचके मरनेसे दु:ख हुआ पाण्डवोंको कि हमारा ऐसा वीर मर गया। भगवान् ऐसे पीताम्बर करके नाचने लगे और अर्जुनको उठाकर हृदय लगाते हैं। आज मेरा अर्जुन बच गया। मौज हो गयी। पाण्डवपक्षी कहते हैं आज हमारे पक्षका इतना बड़ा वीर मारा गया, आपको खुशी आती है। भगवान्ने कहा कि मैं पाण्डवोंका पक्षपाती नहीं हूँ। मैं धर्मका पक्षपाती हूँ। ये राक्षस बचता तो राक्षसपना करता—मेरेको मारना पड़ता। ये तो ठीक ही हुआ एक साथ दो काम हो गया। कर्णके पास जबतक शक्ति थी तबतक मेरेको रात्रिमें नींद नहीं आती थी। सोचता था और जब-जब कर्ण आता सामने तब उसको भुला देता कि कहीं शक्ति न छोड़ दे। शक्तिको याद नहीं रहने देता। ऐसी मैं सावधानी रखता था। अब मौज हो गयी, आनन्द हो गया। मेरा अर्जुन बच गया।

कर्णकी एक विलक्षण बात याद आ गयी। ये युद्ध करता था उस समय एक साँप आया। बड़ा जहरीला था, उसने कहा तू बाणमें मेरेको लगा दे। अर्जुनको मैं मार दूँगा। वह साँप था, खाण्डीव वन दाह किया। उस समय अर्जुनने शरपञ्जर बाँध दिया, जिससे कोई जन्तु भीतर जा न सके। बाहर सब-का-सब अग्निको जलाने दे दिया। अग्निको अजीर्ण हो गया था। उसे जलाते समय एक सर्पिणी अपने मुखमें बच्चेको लेकर ऊपरको जा रही थी। उस जाती हुईको अर्जुनने काट दिया। सर्पिणी तो मर गयी। वह बाहर गिर गया। वह कहता है मेरी माँको मार दिया उसको मैं मारूँ। तू मुझे ले ले। कर्णने कहा, 'कर्ण दूसरेकी मदद नहीं लेता है। वह घुसकर बैठ गया तरकसमें। बाण लिया और कर्णने संधान किया। बाण

अर्द्धचन्द्राकार भी होता है, जिससे गला कट जाता है। ऐसा बाण संधान किया। शल्य सारथी थे, कृष्णभगवान्‌के समान ही वे बड़े होशियार थे। वे कहते हैं कर्ण! तेरा बाण है ठीक, निशाना बढ़िया नहीं है, कारण कि ज्यों ही बाण संधान किया, संधान करते ही भगवान्‌ने देखा कि अब तो मौत आयी तो जोरसे ऐसा खुरोंका झटका दिया जिससे घुटनी टिक गयी। रथ नीचा हो गया। अर्जुनके वह बाण यहाँ लगा मुकुटमें। वह जलता हुआ खत्म हो गया। कहा शल्यने कि थोड़ा नीचे कर दो, तो कहा कि कर्ण संधान एक बार ही करता है। दो बार बदलता नहीं। बोलो बाण चलानेमें थोड़ी-सी नोंक ऐसे करनी पड़ती थी। सत्यपर कितनी निष्ठा है। एक बार संधान कर लिया। निशाना बना लिया। अब इतना नीचा करना भी असत्य मानते हैं।

आज झूठ-कपट करती है उन्हीं भाइयोंकी ये सन्तान। अपने बड़कोंने क्या किया। मरना स्वीकार, पर असत्य स्वीकार नहीं।

‘नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥’ (मानस २। २८। ५) ऐसे डटे रहे तो आज कर्णका भी नाम लेते हैं। आदरसे नाम लेते हैं। वह अर्जुनके विपक्षमें था। अरे पक्षमें हो, विपक्षमें हो क्या बात है। सच्चे पुरुष सच्चे ही होते हैं, अच्छे पुरुष अच्छे ही होते हैं। किसी जगह जाय ठीक होते हैं।

भाइयो, बहिनो! भगवान्‌के चरणोंके शरण रहो और सच्चाईसे लोगोंमें व्यवहार करो।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

(दिनांक १६ जुलाई, १९८२)